कहिये समय विचारि

लक्ष्मीनिवास बिड़ला

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

कहिये समय विचारि

—विचार-प्रेरक लघु निबन्ध—

लक्ष्मीनिवास बिड़ला

भूमिका
वियोगी हरि

१९६५

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

तीसरी बार : १९६५
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रिंटर्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के छोटे-छोटे निबन्ध संगृहीत किये गए हैं। ये सब निबन्ध बड़े सरल और सुबोध हैं। सामान्य शिक्षित पाठक भी इन्हें आसानी से समझ सकते हैं। इन निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये ऐसे विषयों पर लिखे गए हैं, जिनका सम्बन्ध सबके साथ, और सब समय, आता है।

ये रचनाएं पाठकों को सोचने के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करती हैं। लेखक ने इन निबन्धों में अपनी बात बहुत संक्षेप में कहकर अवसर पैदा कर दिया है कि पढ़नेवाले उस विषय पर गहराई से विचार करें।

हिन्दी में लघु निबन्धों की परिपाटी प्रायः लुप्त-सी हो गई है। ऐसी अवस्था में यह प्रकाशन पाठकों को एक सुखद प्रयास प्रतीत होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

हम आशा करते हैं कि पुस्तक चाव से पढ़ी जायगी।

तीसरा संस्करण

पाठकों में इस पुस्तक ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त की कि चन्द महीनों में ही तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसमें पांच नये निबन्ध और शामिल कर लिये गए हैं तथा पहले के निबन्धों में यत्र-तत्र कुछ और सामग्री जोड़कर प्रतिपादित विषय को और भी स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार अब निबन्धों की संख्या सत्रह हो गई है।

आशा है, पुस्तक का यह परिवर्द्धित संस्करण भी उसी चाव से पढ़ा जायगा।

—मंत्री

दो शब्द

साहित्य के विविध अंगों में निबन्ध अपना एक विशेष स्थान रखता है—कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि से कुछ निराला ही स्थान। भिन्न-भिन्न विषयों के अनुसार निबन्ध की शैली अलग-अलग प्रकार की होती है, और ऐसे ही, उनका शिल्प और भाषा भी। निबन्ध लम्बे भी होते हैं और छोटे-छोटे भी। विचारात्मक होते हैं और भावात्मक भी। ऐसे भी होते हैं, जो गहराई में उतरने के लिए बाध्य करते हैं, और ऐसे भी, जो अपनी ओर सरलतापूर्वक खींच लेते हैं।

एक समय था, जब हिन्दी-साहित्य में निबन्ध बहुत कम थे, उंगलियों पर गिने जाने लायक। पर जो भी थे, उनमें अपनी एक मौलिकता थी, शैली और भाषा दोनों ही दृष्टियों से। धीरे-धीरे निबन्ध-लेखन की ओर झुकाव बढ़ने लगा, पर जितना चाहिए उतना नहीं। अच्छे-अच्छे लेखकों के, विविध विषयों के, निबन्ध सामने आये—कुछ तो अत्यन्त उच्चकोटि के। मगर सामान्य जनता की शैली और बोली में बहुत कम लिखे गए हैं, जिनसे कि वह लाभ ले सके। किशोर विद्यार्थियों की दृष्टि से उपयोगी निबन्धों की भी आवश्यकता मालूम होती है। 'कहिये समय विचारि' नामक इस छोटी-सी पुस्तक में इसी कोटि के सत्रह निबन्ध हैं, जो इस आवश्यकता की पूर्ति में शायद कुछ हद तक सहायक हो सकते हैं।

पहले निबन्ध 'कहिये समय विचारि' में बताया गया है कि शब्द की भारी महिमा है, वाणी के अन्दर बड़ी ताकत है—बनाने की और बरबाद कर देने की भी। विश्लेषण किया गया है स्पष्ट, मीठी और चतुराईभरी बात का, जबकि वह मौके पर और बिना मौके पर कही गई हो। मतलब यह कि बात करने की भी एक कला होती है।

दूसरे निबन्ध में 'कला' के बारे में लेखक ने कुछ विचार रखे हैं और

यह माना है कि विज्ञान की वदौलत हर चीज की रूप-रेखा भी विद्युत्-गति से बदलती जा रही है, मगर मानव का अन्तस्तल नहीं बदला, वह आज भी 'सत्यम्', 'शिवम्' और 'सुन्दरम्' है।

'चौथो बल है दाम' में रुपये की कहानी का बहुत थोड़े में सार दिया गया है—मानो गागर में सागर भर दिया हो। अन्त में कहा है कि रुपया बहुत अच्छा गुलाम है, मगर बड़ा खतरनाक मालिक भी है।

'सत्य' शीर्षक निवन्ध में सत्य की महिमा का बखान लेखक ने अनेक पहलुओं से किया है और उसके समर्थन में कई सचोट उदाहरण दिये हैं।

फिर 'सन्तोप' का विश्लेषण किया गया है—उसके सही और ग़लत दोनों ही अर्थों में।

'सुख' और 'दु.ख' पर भी अलग-अलग लिखा है। थोड़े में यह कि सुख वेहद तृष्णा में नहीं है, और दु.ख वह चीज है, जो गिरते हुए को उठाता है और सोते को जगाता है। लेखक का विचार है कि जो आदमी दुःख की चलनी से छन गया, वह ईश्वर के बहुत निकट पहुंच गया।

एक निवन्ध में ईश्वर के अस्तित्व का, ऐसे सरल वैज्ञानिक तर्कों द्वारा, विवेचन किया गया है कि बहुत ऊहापोह में पड़ने की आवश्यकता नहीं रहती है। शंका करनेवाला अपनी शंका को ही पकड़ नहीं पाता, वह दांतों उंगली दबाकर स्वतः समाधान की ओर देखता ही रह जाता है।

एक निवन्ध अवतारवाद पर भी है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा गया है। इसमें सिद्ध किया गया है कि समाज को बांधनेवाले धर्म की ग्लानि कभी बढ़ नहीं सकती, बढ़ी कि अवतार आया। क्षण-क्षण, दिन-दिन, अवतार होते हैं और होते रहेंगे।

पूंजी और पूंजीपति के बारे में कुछेक साफ़-साफ़ विचार रखने का लेखक ने प्रयत्न किया है। माना है कि सच्ची पूंजी मनुष्य का श्रम है और उद्योग के विना उसका जीवन न तो अपने लिए और न समाज के लिए हितकर हो सकता है।

'नर बड़ा या नारायण', इस निवन्ध में भक्तिपूर्वक सरल तर्कों के साथ

राम और कृष्ण के लीला-चरितों की तुलना करते हुए लेखक ने पूछा है कि इन दो में कौन अधिक लोकप्रिय हुआ है, और क्यों ?

'सजग गुरु' प्रकृति की वैज्ञानिक पाठशाला में, जहां छुट्टी का कभी नाम नहीं, क्षण-क्षण पढ़ाता ही रहता है, यदि विद्यार्थी के अन्दर पढ़ने-सीखने की सच्ची साध हो।

'कथा-कहानी' निवन्ध में कहानी कला का वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। लेखक का यह कहना सही है कि "व्यक्ति और समाज का सच्चा अंकन कहानियां ही करती हैं और साधारण मनुष्य का असली मानचित्र का पता कहानी-साहित्य से ही लगता है। इस निवन्ध में वैदिककाल से लेकर आजतक के कहानी-विज्ञान पर खासा प्रकाश डाला गया है।

'भ्रमण' शीर्षक निवन्ध प्रेरणा देता है और उत्साहित करता है भ्रमण करने की पुरुषार्थमयी प्रवृत्ति को, कि न केवल भू-मण्डल की ही यात्रा की जाय, वल्कि अन्तरिक्ष-विहार भी किया जाय। भ्रमण की उपादेयता वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। ज्ञानवर्द्धक तो यह निवन्ध है ही, मनोरंजक भी कम नहीं है।

"सुराज' में दिखाया गया है कि क्षात्र-वल से ब्रह्म-वल अर्थात् आत्म-संयम का वल कहीं अधिक ऊंचा है, और यह भी कि वाहरी प्रतिवन्धों से वंधकर सुराज अपनी निजी विशेषता को खो बैठता है।

'विश्व को भारत की देन' यह निवन्ध वहुत अच्छा वन पड़ा है। दिखाया गया है कि आदि वैदिक काल में सभ्यता का जो अरुणोदय हुआ था, उसके प्रकाश में विश्व ने वहुत-कुछ सीखा। अध्यात्म एवं व्यवहार के विकासशील, विखरे हुए विचारों को तो उस प्रकाश में देखा ही जा सकता है, भौतिक विज्ञान के कई मूल तत्वों तक भी पहुंचा जा सकता है, इस तथ्य पर लेखक ने खासा अच्छा प्रकाश डाला है।

अन्तिम निवन्ध है 'पढ़ा, पर गुणा नहीं' यह छोटा-सा निबन्ध आज के विद्यार्थी के हित में बहुत उपयोगी है। पढ़ना वही और उतना ही हितकर है, जिसे गहरे मनन और चिन्तन के द्वारा कार्यरूप में परिणत कर लिया गया

हो। लेखक के शब्दों में 'ज्ञानी से भी श्रेष्ठ ज्ञानमार्ग पर चलनेवाला होता है, और वही विद्या का पूरा 'गुणन' करता है।'

ये निबन्ध एक ही समय के लिखे हुए नहीं हैं। कुछ तो काफी समय पहले लिखे गए थे और कुछ हाल में, पिछले दिनों। विचारों को बहुत करके सभी निबन्धों में सीधे और साफ ढंग से लेखक ने रखा है, विषय को सादा, किन्तु सुन्दर चौखटे में कसने का प्रयत्न किया है और भाषा में बनावटीपन नहीं आने दिया। जगह-जगह उदाहरणों से निबन्धों को सजाने का काम खासा अच्छा हुआ है। पुराने विचारों को बिना तोड़े जो नये विचारों के साथ जोड़ा है, वह भी कलात्मक बना है। कुल मिलाकर इन छोटे-छोटे निबन्धों में कुछ ऐसी चीज है, जो पाठक को अपनी ओर खींच सकती है।

—वियोगी हरि

सूची

१

'कहिये समय विचारि'

एक राजा बड़ा गुणग्राही था। दूर-दूर से बड़े-बड़े पंडित उसकी सभा में आते थे। एक दिन एक पंडित राजा का नाम सुन-कर आया। उसने तीन प्रश्न सभा के विद्वानों के सामने रखे—

१. दुनिया में सबसे महान वस्तु क्या है? २. वह कहां रहती है? ३. वह क्या करती है?

कोई भी जवाब न दे सका। एक कोने में एक नवयुवक बैठा था। वह सामने आया और जवाब देने की राजा से आज्ञा मांगी। आज्ञा मिलने पर उसने बताया :

१. सबसे महान वस्तु है मुंह से निकली हुई बात, २. यह सच्चे और वीर पुरुषों की ज़बान पर रहती है, ३. इससे ऐसे-ऐसे काम बनते हैं, जो न तो बल से और न धन से सधने सम्भव हैं।

आगन्तुक पंडित को इस उत्तर से संतोष हो गया और राजा ने इस नवयुवक को अपना मंत्री बना लिया।

शब्द की निस्संदेह बड़ी महिमा है। ऋग्वेद के अनुसार शब्द में एक दैविक शक्ति है। सुमैरियन साहित्य के अनुसार 'शब्द' का अर्थ ही है—ईश्वर की शक्ति। नये टेस्टामेंट में उल्लेख है कि "आदि में था शब्द, और शब्द था ईश्वर।"

वास्तव में शब्दों में जादू भरा रहता है। चाहे कोई घरेलू मामला हो या राष्ट्रीय, उसके सुलझाने में शब्दों से बड़ी मदद

मिलती है।

शब्द-रचना में लालित्य हो, यह बोलनेवाले पर निर्भर करता है। केवल पढ़ लेने से ही लालित्य नहीं आता।

एक बार कहते हैं, किसी पंडित ने श्लोक बनाया, "शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे।"

कालिदास ने सुनते-सुनते अपने हाथों से दोनों कान ढक लिये। यह श्लोक इतना कर्णकटु था कि इसे कविता कहना ग़लत होगा। कालिदास ने तुरन्त इसी आशय को यों बदल दिया, "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः।"

बोली से ही अक्लमन्द और बेवकूफ़ का फ़र्क मालूम देता है। ज़बान से ही उच्च और नीच का पता चलता है। शिवाजी के समय कल्याण में एक नवाब का राज्य था। नवाब हिन्दुओं पर भांति-भांति के अत्याचार किया करता था। शिवाजी ने यह सुना तो नवाब पर एक दिन हमला बोल दिया। नवाब लड़ाई में मारा गया। नवाब की बेगम को पकड़कर प्रहरियों ने शिवाजी के सामने पेश किया। देखते ही शिवाजी ने झुककर आदाब किया और कहा, "मेरी मां जीजाबाई आपकी तरह सुन्दर होतीं तो मैं भी खूबसूरत होता।" यह सुनते ही बेगम ही नहीं, उसके साथ पकड़ी गईं बांदियों और हरकारों, सबकी आंखों में आंसू आ गए और मन से वे शिवाजी के गुलाम बन गए।

चैतन्य महाप्रभु ने सन्त-युग में भक्ति का मार्ग बताया। उनके समय में जगाई और माधाई नाम के दो दुष्ट मनुष्य थे। सन्त की निर्मल वाणी के प्रभाव से उनका काया-पलट हो गया और वे साधु बन गए।

बातों द्वारा मनुष्य दूसरे पर प्रभाव डालता है। ज़बान एक

पुल है, जिसपर होकर एक दिमाग़ दूसरे दिमाग़ में प्रवेश करता है। जब कुरुक्षेत्र में अर्जुन अपना कर्त्तव्य भूलकर, शस्त्र त्यागकर, बैठ गया तो श्रीकृष्ण ने शुरू में ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें न कहकर मन की दुर्बलता को त्याज्य बताते हुए देह की नश्वरता की ओर उसका ध्यान खींचा। कहा, "तुम मारने से डरते हो। किन्तु कौन किसे मारता है और कौन मरता है ? आत्मा तो अजर है, अमर है।" धीरे-धीरे अर्जुन को ज्ञान हुआ और वह युद्ध में खड़ा हो गया। यह शब्दों का ही तो चमत्कार था।

अथर्ववेद में आयी है—"वाक् वदामि मधुमत्।" किन्तु शहद-भरे मीठे वाक्य से हमेशा काम बन ही जाता हो, ऐसा नहीं है और न यह ज़रूरी है कि गम्भीर और न्याययुक्त बात से अनुकूल परिणाम निकल आता हो। उपयुक्त शब्दों के साथ उपयुक्त अवसर भी चाहिए। वह निर्भर करता है सुननेवाले के मन के भाव पर। कृष्ण से ज़्यादा कौन चतुर होगा, किन्तु दुर्योधन पर उनकी बातों का असर नहीं पड़ा और महाभारत का युद्ध नहीं टला।

अवसर की बात कहने के लिए थोड़ा मनोविज्ञान भी जानना ज़रूरी है।

कैकेयी बहुत समझदार थी। रामचन्द्र को मां की तरह प्यार करती थी। इतने पर भी मन्थरा दासी के वाक्-चातुर्य ने उसपर ऐसा असर डाला कि रामचन्द्र को वनवास भोगना पड़ा।

आवेश से अक्सर काम बिगड़ जाता है। चतुर वक्ता सदा आवेश को क़ाबू में रखता है। एक बार लन्दन में एक बैरिस्टर ने एक मामले पर बड़े ज़ोर से बहस की, किन्तु न्यायाधीश ने फ़ैसला उसके खिलाफ़ दिया। बैरिस्टर नौजवान था। उसके मुंह

से निकल पड़ा, "कैसे ताज्जुब की बात है कि अदालत ऐसे फ़ैसले देती है!" न्यायाधीश ने तुरन्त मानहानि के लिए बैरिस्टर को नोटिस दिया और मुकदमे की तारीख़ तय हो गई। उस समय लार्ड रीडिंग, जो वाद में हिन्दुस्तान के वाइसराय हुए, लन्दन में वकालत करते थे। उन्होंने जब यह किस्सा सुना तो बैरिस्टर की तरफ़ से पैरवी करने का भार अपने ऊपर ले लिया। न्यायाधीश के समक्ष बैरिस्टर पेश किया गया। लार्ड रीडिंग ने पैरवी शुरू की। उन्होंने कहा, "न्यायाधीश महोदय, यह बैरिस्टर अभी नौजवान है। मैंने समझा दिया है, अब वह आपके किसी भी फ़ैसले पर ताज्जुब ज़ाहिर नहीं करेगा।" सारा इजलास हँस पड़ा। बेचारा न्यायाधीश क्या करता! झेंपकर रह गया।

इस घटना से स्पष्ट है कि मौके पर छोटी-छोटी बातें भी बड़ा काम कर जाती हैं, जैसाकि सुकवि विहारी के दोहे के बारे में कहा गया है, "देखत के छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।" यह बात कभी-कभी पूरी घट जाती है।

रोम में जूलियस सीज़र का ख़ून करनेवालों का मुखिया था ब्रूटस। शहर में ब्रूटस का बहुत सम्मान था और उसकी बातों पर लोगों का पूरा भरोसा था। ऐण्टनी सीज़र का मित्र था। उसने ब्रूटस से दो शब्द कहने की आज्ञा मांगी। ब्रूटस को अपनी ताकत का इतना ज्यादा भरोसा था कि उसने ऐसी तुच्छ बात नामंज़ूर नहीं की। किन्तु जव ऐण्टनी ने बोलना शुरू किया तो पासा ही पलट गया और जनता दौड़ पड़ी उल्टे ब्रूटस और उसके साथियों को क़त्ल करने।

मौक़े पर कही गई कटु बात कई बार प्रलयंकारी साबित हो जाती है। द्रौपदी के ताने ने महाभारत-युद्ध का बीज बोया और

शूर्पनखा के ताने ने रावण की लंका ढाही, खासकर स्त्रियों के तानों ने कितने ही युद्धों का सूत्रपात किया है। यह इतिहास-प्रसिद्ध है कि चित्तौड़गढ़ अभेद्य था। गहलोतवंशीय राणा रत्नसेन समृद्धिशाली था। एक दिन भोजन स्वादहीन बताने पर उसकी पटरानी ने ताना मारा कि पद्मिनी क्यों नहीं ले आते? फिर क्या था, राणा ने सन्थली राज्य पर आक्रमण करके पद्मिनी से विवाह कर लिया। पद्मिनी के कारण बादशाह अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध हुआ, जिसमें चित्तौड़ के बड़े-बड़े योद्धा काम आये।

विद्वान अंग्रेज़ लेखक जेम्स ब्राइस लिखते हैं, "शब्द मोहरे हैं, जिनसे अक़्लमन्द खेल खेलते हैं।"

गत विश्वयुद्ध में अंग्रेज़ों की हार-पर-हार हो रही थी। ऐसा ढंग था कि यूरोप पर हिटलर का एकछत्र राज्य हो जायगा। अंग्रेज़ों के पास लड़ने का सामान भी पूरा न था। लार्ड लोथियन को ऐसे समय अमरीका भेजा गया। यह जानी हुई बात है कि रूज़वेल्ट पर उन्होंने ऐसा प्रभाव डाला कि अमरीका से ज़ोरों से मदद मिलने लगी।

बिना निश्चयात्मक और शुद्ध बुद्धि से सोचे ठीक और सही बात कहना कठिन हो जाता है। एथेन्स में सुकरात पर मुक़दमा चलाया गया कि वह राज्य के बने हुए नियमों के खिलाफ़ नौजवानों को शिक्षा देता है। किन्तु जब सुकरात ने प्रश्न करने शुरू किये तो साबित यह हो गया कि नियमों का विरोध तो उल्टे मुक़दमा चलानेवाले करते हैं।

झूठी बातों से काम नहीं बनता। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' ही काम देता है। मशहूर फ्रांसीसी राजदूत मांसए द कैलियर

ने लिखा है कि अच्छा राजदूत न तो झूठा विश्वास दिलाकर और न ऐसी प्रतिज्ञाओं से, जो कभी पूरी न हो सकें, काम बनाने की कोशिश करता है। यह मानना कि राजदूत ठगाई के बिना काम पूरा नहीं कर सकता, एक भारी भूल है।

पूर्णतया सच बात का भी कभी कभी लोगों पर उल्टा असर पड़ता है। एक सज्जन चाहते थे कि उनके मित्र समझें कि वह बहुत ज़रूरी काम पर आये हैं। पार्टी के पश्चात् किसी पत्रकार से न रहा गया और वह पूछ ही बैठा, "महाशय, आज आप यहां कैसे ?" जवाब मिला और कितना सच, "यहां आने के लिए।" पत्रकार उत्सुकता न दबा सका और फिर प्रश्न कर बैठा, "किन्तु ऐसी कौन-सी इच्छा थी, जो आपको यहां घसीट लाई ?" "मेरे मेजबान की कृपा और लोगों को देखने का कौतूहल।" पत्रकार बड़ा चिपटू था। फिर बोल उठा, "लेकिन यहां आज आपको क्या सफलता मिली ?" तड़ाक से जवाब मिला, "फिर-से आने का निमन्त्रण।" पत्रकार फिर भी नहीं माना और उसने प्रश्न किया, "दुबारा कौन-से काम से आयंगे ?" आगन्तुक सज्जन भी उससे कुछ कम न थे, झट बोले, "अपने मित्रों की संगति का आनन्द लेने।" अन्त में, पत्रकार महाशय अपना सा मुंह लेकर रह गए। जो प्रभाव आगन्तुक सज्जन डालना चाहते थे, वह पड़ गया।

कई बार हाज़िरजवाबी से भी काम बन जाता है। एक बार एक हलवाई ने एक वकील को रास्ता चलते जा पकड़ा और कहा कि वह कुछ सलाह लेना चाहता है। हलवाई ने पूछा, "एक सज्जन का कुत्ता अक्सर मिठाई चुराकर खा जाता है। इसपर कानूनी कार्रवाई क्या हो सकती है ?" जवाब मिला, "आप कुत्ते

के मालिक से पूरा पैसा वसूल कर सकते हैं।" हलवाई ने खुश होकर कहा, "वाह, तब तो बात ही क्या है ! आपका कुत्ता ही वह चोर है, जो कई बार मिठाई खा गया। उसके सात रुपये चुकाइये।" वकील साहब ने तुरन्त जवाब दिया, "मेरी सलाह की फीस के पन्द्रह रुपये होते हैं। आप खुशी से सात रुपये काटकर बाकी मुझे दे दीजिये।" हलवाई अब क्या उत्तर देता !

एक बार अदालत में प्रतिवादी के एक गवाह से पूछा गया, "क्या आप झूठ बोलना भी जानते हैं ?" गवाह ने तुरन्त जवाब दिया, "जनाब, आपकी सिखाई हुई इस विद्या में मैं अभी निपुण नहीं हुआ।" सुनते ही हाकिम भी खिलखिला उठे और वकील-साहब की ज़बान बन्द हो गई।

समय पर कही गई उपयुक्त बात बादशाहों की ज़बान भी बन्द कर देती है। कहते हैं, महारानी विक्टोरिया अपने प्रधान-मंत्री ग्लैड्स्टन से खुश नहीं थीं। एक दिन किसी बात पर मतभेद हो गया और महारानी ने कहा, "जानते हो, तुम साम्राज्ञी से बातें कर रहे हो?" ग्लैड्स्टन ने तुरंत उत्तर दिया, "जी महारानीजी, याद रखिये, आपसे जनता बात कर रही है।" साम्राज्ञी को चुप हो जाना पड़ा।

कभी बड़ी बातों से काम नहीं बनता, पर दो शब्द का नारा बाज़ी मार देता है। सन १९३१ में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की मांग पेश की। ब्रिटिश सरकार ने १९३५ में नया क़ानून बनाया। देखने में लगता था कि मंत्री राज्य करेंगे, किन्तु वास्तव में सारी शक्ति वाइसराय के पास केन्द्रित थी। उन्होंने कहा कि पूर्ण स्वराज्य दे दिया।

सन १९४२ के आन्दोलन में महात्माजी ने पूर्ण स्वराज्य का

जवाब दिया—"भारत छोड़ो" के नये नारे से। सरकार का जवाब खत्म हो गया।

सन १९६० के चुनाव के वक्त ब्रिटेन की मज़दूर पार्टी ने बड़े-बड़े शब्दों में अपनी नीति की घोषणा की। किन्तु कंज़रवेटिव पार्टी ने इसका जवाब छोटे-से नारे से दिया—"ऐसी समृद्धि कभी न थी।" कंज़रवेटिव जीत गए।

विवेचन और अनुभव से वाणी में शक्ति आती है। आदि-काल से लेकर आजतक शब्द की शक्ति बरक़रार रही है और जबतक बुद्धि से काम चलेगा, यह शक्ति अक्षय ही रहेगी। कवि की ये सूक्तियां बराबर सच्ची रहेंगी :

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
... ...
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।

२

कला

कला पर हज़ारों पुस्तकें लिखी गईं, लाखों पृष्ठों में कला की बारीकियां बताई गईं। इनको बिछाया जाय तो कलकत्ते के आर-पार एक अच्छी-सी सड़क बन सकती है। इतना होने पर भी कला की व्याख्या सही-सही, साफ़-साफ़ और सरल शब्दों में अबतक नहीं हो सकी।

मनुष्य के विकास का इतिहास वृहद् है। वही कला के विकास और विस्तार की भी इतिहास है। मनुष्य केवल शरीर से ही जबतक मनुष्य कहलाता था, वनमानुष और मनुष्य में कोई भेद न था, तबतक कला नाम की कोई वस्तु न थी। किन्तु जिस दिन से मनुष्य बना, उसमें बुद्धि आई, उसी दिन कला का जन्म हुआ।

जिस दिन नौजवान ने ऊपर चारों तरफ़ नज़र घुमाई, प्रकृति की अनोखी सुन्दरता देखी, चिड़ियों की चहचहाहट सुनकर खुद भी वह नाच उठा, हाथियों की अलमस्ती देखकर खुद भी झूमने लगा, शेर की छलांग के साथ, भय से नहीं; किन्तु उसकी तेज़ी की नक़ल करके खुद छलांगे मारने लगा, उसी दिन से कला का विकास शुरू हो गया। पहले शिकारी ने पत्थर का भाला बनाया। पहली गृहिणी ने तीन पत्थर रखकर चूल्हा बनाया। पहली नर्तकी ने मोर का नाच देखकर उसका साथ दिया। पहले बच्चे ने

चिड़िया के साथ सुर मिलाया और उसी दिन सरस्वती का आह्वान कर दिया। दुनिया में जो कुछ भी बना-बनाया दीखता है, वह सारा या तो प्रकृति द्वारा या कला द्वारा निर्मित है। कहते हैं, राजा विक्रमादित्य चौंसठ कला-निधान थे। हुनर हो या ललित कला, दोनों ही कला के अंग हैं। लोहा ढालकर मशीन बनानेवाला हो या पत्थर की मूर्ति बनानेवाला दक्ष शिल्पी, चाहे प्रयोगशाला में बैठकर रिसर्च करनेवाला वैज्ञानिक हो या अन्तर में गुदगुदी पैदा करनेवाला कवि, सभी कलाकार हैं।

असल में मनुष्य प्रकृति की सुन्दरतम सफलता का दिग्दर्शन है, प्रकृति प्रगतिशील है। वह बीती बातें नहीं दोहराती, बल्कि पुराने से नया और सुन्दर भाव निकालती है। उसी तरह मनुष्य की कृति पर अपने समय की तो छाप रहती ही है, पर वह नित-नये विचारों को भी रूप देता है।

कौशल और लालित्य, कला के इन दोनों अंगों के बिना मनुष्य का काम पूरा नहीं होता। किसी कवि ने कहा है :

साहित्यसंगीतकलाविहीनः,
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।

सच है, बिना कला के पशु और मनुष्य में कोई फ़र्क नहीं रहता।

कला विहीन मनुष्य कतिपय आनन्दमय क्षणों के रसास्वादन से वंचित रहता है। कला असत्य का पोषण नहीं करती; किन्तु सत्य का चित्रण करती है। कला मनुष्य की कृति तो है; किन्तु सफल होती है उस महती शक्ति की प्रेरणा से ही। कला बुद्धि को सान पर चढ़ा देती है। कला के पुजारियों में न काले-गोरे का भेद रहता है, न देश, काल और भाषा का। हिंसा और द्वेष से

दूर हटकर मन शान्त हो जाता है। फिर अवचेतना के स्वप्नों में जब वह अनन्त में निर्बाध दौड़ लगाता है, तब सुख और दुःख, महत्ता और तुच्छता, आराम और तकलीफ़ सब छोड़कर, बस, उस सुन्दरतम एक राग में विभोर होकर आत्मा के अत्यन्त निकट पहुंच जाता है। कलाकार जितना ज़्यादा कल्पना-लोक में विचरण करता है, उतनी ही उसमें आगे बढ़ने की तत्परता आती है। आविष्कारों की बुनियाद कल्पना-क्षेत्र में ही पड़ी थी। कल्पना और क्रिया के सामंजस्य से ही कला की प्रगति होती है। कला की व्याख्या यों कर देना असम्भव है, किन्तु जो इस गहरे में डुबकी लगाते हैं, वे ही इसे समझ पाते हैं।

यों तो पत्थर पड़े हुए सभी देखते हैं, किन्तु कलाकार की यह खूबी है कि उन पत्थरों में से हीरे को चुन लेता है और उसे काटकर चमकदार नग बना देता है। पर यह नहीं कि वह हीरे की चमक देखकर गुलाब की पंखुड़ी की कोमलता भुला देता है। उसे गुलाब की मधुर सुगन्ध भी उतनी ही पसन्द है, जितनी माणिक की दमक। वह तो गुणों का पारखी है।

कला-कौशल, देश में शांति और समृद्धि हो, तभी पनपते हैं। महाभारत में वर्णन आया है कि मय दानव ने पांडवों के लिए एक बड़ा अद्भुत महल बनाया था। उसमें जहां दरवाज़ा नहीं था, वहां दरवाज़ा मालूम पड़ता था, और जहां दरवाज़े थे, वहां सपाट दीवार दीखती थी। अज्ञातवास में अर्जुन ने नर्तकी का वेश बनाकर राजा विराट् की पुत्री उत्तरा को नाच सिखाकर एक साल बिताया।

कौटिल्य के समय में गान, वाद्य, नाच, पढ़ना, खेलना, तस्वीर खींचना, सुगन्ध तयार करना, माला गूंथना इत्यादि कला-

शिल्प सिखानेवालों का भरण-पोषण राजा की तरफ़ से होता था। कहते हैं, राजा भोज के समय में शत्रु-सेना की गति-विधि देखने के लिए भोज का सैनिक गुब्बारे में बैठकर ऊपर उड़ता था। चूंकि गुब्बारे की चाल हवा पर निर्भर करती थी, इसलिए जिस दिशा में चाहे,उधर ले जाने के लिए गुब्बारे में छह या आठ चीलें जोड़ी जाती थीं, जो सैनिक के इशारों से गुब्बारे का रुख ठीक रखती थीं।

अब भी हज़ारों वैज्ञानिक देश के लिए प्रयोगशाला में बैठे कला की आराधना करते हैं। आज दुनिया की रफ़्तार बहुत तेज़ हो गई है। जहां पहुंचने में बीसों दिन लगते थे, वहां कुछ ही घंटों में पहुंच जाते हैं। चन्द्रलोक तक जाने की तैयारी हो गई है। अमरीका में बिजली का एक ऐसा मस्तिष्क बना, जो बड़े-से-बड़े सवाल कुछ ही मिनटों में हल कर देता है। राकेट या अन्तरिक्ष में जानेवाले यानों की गति-विधि के बारे में बड़े-बड़े हिसाब हल करने पड़ते हैं। यदि मनुष्य हल करने बैठे तो उसे ३-४ वर्ष लगें। किन्तु यह मस्तिष्क ऐसे सवाल दो-तीन दिनों में ही हल कर देता है।

अणु का विभाजन और संयोजन, दोनों विधियां, वैज्ञानिकों ने खोज निकालीं। खोजनेवालों के दिल हिंसा से बहुत दूर थे; किन्तु दोनों विधियों का उपयोग हुआ अणुबम बनाने में ! बहुत बार कला से कला नष्ट करने का काम भी लिया जाता है, तब भी बिना कला के मनुष्य की प्रगति नहीं हो सकती। आत्मा को खुराक कला से ही मिलती है। लालित्यमय लेख हों या चतुर चितेरे के सजीव चित्र, चाहे कठिन रोग के कीटाणु मारनेवाली औषधि हो या कोबाल्ट अणु का विस्फोटन, यह प्रगति रुकी तो मनुष्य का अन्त ही मानना चाहिए।

विचारों का आदान-प्रदान हर देश से बढ़ गया। हर वस्तु में विशेषता की चाह बढ़ गई। भाव बदलता जा रहा है, रूप-रेखा भी विद्युत्-गति से बदल रही है। किन्तु अन्तस्तल नहीं बदला। आज भी वह है 'सत्यम्, शिवम् सुन्दरम्।' इसे समझने-वाले मर्मज्ञ ही इस गति में सीख दे सकेंगे।

३

'चौथो बल है दाम'

युधिष्ठिर को शर-शैया पर से उपदेश देते हुए भीष्म पितामह ने कहा था, "राजा धान्य आदि वस्तुओं में से छठे भाग का कर ग्रहण करे।"

फिर युधिष्ठिर से उन्होंने कहा, "तुम्हारा धान्य-गृह प्रचुर अन्न की राशि से सदा भरा-पूरा और उत्तम सेवकों से सुरक्षित रहे।"

उस समय धन की परिभाषा थी धान्य, फल और फलनेवाले वृक्ष, पशु, ढोर इत्यादि। वह अदला-बदली का युग था। आपस की लेन-देन वस्तुओं के द्वारा ही होता था। रघु के पास अन्न है, उसे चाहिए कपास। धन्ना के पास कपास तो है, किन्तु अन्न भी काफ़ी है, उसे तो जूतों के लिए चमड़े की ज़रूरत है। उसने रघु से यदि अन्न लेकर कपास दे दिया तो रघु का काम बन गया, नहीं तो दोनों की मांग बाकी ही रह गई। न तो रघु को कपास मिला, न धन्ना को चमड़ा।

छोटे गांव में पांच-सात घर थे। उनसे काम पार न पड़ा तो धन्ना कपास लेकर दूसरे गांव गया; लेकिन वहांवालों ने भी कपास लेना अस्वीकार किया तो धन्ना बिना जूते के ही रह गया। इस तरह अड़चनें आने लगीं और आपसी व्यवहार में रुकावटें होने लगीं। किसीने सोचा कि क्यों न गाय को कीमत

निर्धारित की जाय? एक गाय के बदले २५ मन गेहूं या ५० गज़ कपड़ा। यह हुआ मुद्रा का पहला रूप।

देवर्षि नारद ने महाराजा शशविन्दु के अश्वमेध-यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा था, "प्रति हाथी के साथ एक सौ रथ और हरेक रथ के साथ एक सौ उत्तम घोड़े थे, हरेक घोड़े के साथ सौ गायें और प्रति गऊ के साथ सौ बकरे और मेढ़े नियुक्त थे। यह अपार धन महाराजा शशविंदु ने ब्राह्मणों को दान किया था।"

इसी तरह महाराजा गय के दान का भी वर्णन मिलता है। कहते हैं, "महाराजा गय ने पृथिवी पर जितने बालू के कण दीख पड़ते हैं, उतनी ही गऊएं ब्राह्मणों को दान में दे दीं।"

एक ऋषि ने गुरुदक्षिणा में एक हज़ार गायें शिष्य से मांगीं और शिष्य ने धन उपार्जन करके इतनी गायें गुरु को समर्पण कीं।

गऊ का चलन था। इसलिए गुरु ने गो-दक्षिणा मांगी और शिष्य ने वही दी। रुपया वस्तुओं का अदल-बदल करने के लिए माप-दण्ड है। माप-दण्ड होने के सिवा रुपये में दो गुण और होने चाहिए, एक तो लेन-देन में, दूसरे रखने की सुविधा। गाय को रुपया माना जाय तो रहने के लिए खलिहान और रोज़ खिलाने के लिए भूसा भी चाहिए। यदि कोई धनवान हुआ और उसके पास कई गायें जमा हो गईं तो उनकी सार-सम्हाल के लिए नौकर की भी ज़रूरत हो गई। कहीं दुर्भाग्य से महामारी आ गई तो सारा धन ही खत्म हो गया।

संस्कृत-साहित्य में एक शब्द आता है 'पंचगु'। इसका अर्थ है, पांच गायें देकर खरीदा हुआ। अंग्रेज़ी में पिक्यूनियरी

(Pecuniary) शब्द आर्थिक विषय के लिए आता है। यह लेटिन के शब्द पिक्यूनिया (Pecunia) से बना है, जिसका अर्थ है गाय, बैल इत्यादि। इससे ज्ञात होता है कि पशु-रुपया पाश्चात्य देशों में भी प्रचलित था। वहां भी बकरी या गाय से वस्तुओं का लेन-देन होता था।

पशु-रुपयों की तकलीफ़ों को दूर करने के लिए सिक्कों का चलन जारी हुआ। पहले सिक्के सोने के बने। स्वर्ण-मुद्रा का उल्लेख पुरानी कहानियों में तथा इतिहास में आता है। चूंकि सोने से क़ीमती और कोई धातु थी नहीं, अतः सिक्के सोने के बनने लगे। जवाहरात एक माप के नहीं होते थे, लेकिन सोने में यह गुण है कि उससे एक माप के सिक्के बन सकते हैं। स्वर्ण-मुद्रा का मूल्य ज्यादा होने के कारण छोटे सिक्कों की ज़रूरत पड़ने लगी और कुछ चांदी के और ज्यादा तांबे के सिक्के भी बनने लगे। दमड़ी भी तांबे की बनी।

सिक्के निकाले राजा ने। मुद्रा का मूल्य तौल और धातु पर निर्भर करता था। राजा की ही बात पर ऐसा विश्वास हो सकता था, इसलिए मुद्रा का चलन भी एक राजकीय काम हो गया। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मुद्रा निकालना और उसकी देखभाल जिस अमात्य के जिम्मे थी, वह 'लक्षणाध्यक्ष' कहलाता था।

सोना सबसे क़ीमती इसलिए हुआ कि वह बहुत कम मिलता था। हर वस्तु की क़ीमत उसके उत्पादन और मांग पर निर्भर करती है, वैसे ही सोने की क़ीमत भी।

सिक्के की क़ीमत घटती है या तो धातु की क़ीमत के साथ, या वस्तुओं के उत्पादन के साथ। अन्न, वस्त्र का उत्पादन कम

हुआ तो इनके दाम बढ़ गए, मुद्रा की क़ीमत घट गई। इसी तरह यदि अन्न, वस्त्र की पैदायश वढ़ी तो मुद्रा की क़ीमत वढ़ गई।

देश में आवादी अभी वढ़ी न थी। ज़रूरत से ज़्यादा ज़मीन लोगों के पास थी। धन-धान्य की कमी न थी। मुद्रा या पीछे मोहर की क़ीमत ज़्यादा रही। छोटे सिक्कों की ज़्यादा ज़रूरत पड़ती थी। यों तो कौटिल्य के ज़माने में रौप्य मुद्रा या रूपिका चालू हो चुकी थी, पर शेरशाह ने पहले-पहल आज का रुपया चलाया। केवल रुपये की सूरत वदल गई; किन्तु चलन अवतक उसीका है।

उधर पाश्चात्य देशों में राजसत्ता जैसे-जैसे मज़बूत वनी और राजा का विश्वास लोगों में वढ़ा कि वहां कागज़ के नोट भी चल पड़े और वही सिक्कों का काम देने लगे। हां, शुरू-शुरू में नोटों के वरावर खज़ाने में सोना-चांदी ज़रूर रखा जाता था। राजसत्ता पर ज्यों-ज्यों विश्वास बढ़ा, खज़ाने में धीरे-धीरे सोने की मात्रा कम होती गई। प्रथम विश्व-युद्ध के वाद जर्मनी के पास सोना विलकुल नहीं रह गया, तो उन्होंने देश के कारखानों को अमानत मानकर नया सिक्का निकाला। किन्तु सवसे पहले नोट निकालने का श्रेय चीन को है। आज से २३०० वर्ष पूर्व चमड़े के, उसके पश्चात २१५० वर्ष पूर्व कागज़ के, नोटों का चलन वहां हो गया था।

यहां वढ़ने लगी आवादी। उपज आवादी के पैमाने पर ज़्यादा वढ़ी नहीं, किन्तु जितनी थी वह ज़्यादा आदमियों में बंटने लगी तो भाव वढ़े। यानी वस्तुएं कम हो गईं, इसलिए वस्तुओं के दाम वढ़े और सिक्कों की क़ीमत कम हो गई। पैदाइश और कमी के हिसाव से क़ीमत घटती-बढ़ती है।

सिक्का चाहे सोने का हो, चाहे चांदी या तांबे का, उसका उपयोग वस्तुओं के लेन-देन का ही है। उसके बदले चाहे उपयोग की वस्तुएं खरीदी जायं, उसे व्यापार, कल-कारखानों के लिए उपयोग में लिया जाय, तभी तक उसकी क़ीमत है। यदि सिक्का जमा करके रखा जाय और उसका कोई उपयोग न हो तो उसकी कोई क़ीमत नहीं।

कवि वृन्द ने कहा है :

सरस्वति के भण्डार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यौं खरचै त्यों-त्यों बढ़ै, बिन खरचे घट जात॥

यह बात लक्ष्मी के भण्डार पर भी लागू होती है। सदुपयोग से लक्ष्मी का भण्डार बढ़ता है और दुरुपयोग से घटता तो है ही, ख़त्म भी हो जाता है।

दरअसल रुपया है मनुष्य की मेहनत। मेहनत चाहे शारीरिक हो या मस्तिष्क की, धन मेहनत ही पैदा करती है, और सिक्का है उसका माप-दण्ड। बिना मेहनत न तो धन पैदा होता है, न उसका प्रतीक रुपया मिलता है।

सिक्के का चलन होते ही राज-कर भी सिक्के के रूप में दिया जाने लगा। चूंकि पहले-पहल खेतों में पैदा होने पर राजा को अनाज दिया जाता था, ज़मीन पर कर लगाया गया। किसान अनाज बेचकर सिक्के राजा की भेंट करने लगे।

जैसे सूर्य समुद्र से पानी सोखकर वापिस वर्षा करता है, महाराजा दशरथ भी कर लेकर वापस प्रजा पर वर्षा करते थे। लेकिन अब तो कोई ऐसी वस्तु नहीं छूटी, जिसपर कर न हो।

मुक्त-चलन का उपयोग अब देशों में जीवनों के दामों में कमी-

बेशी करने के लिए भी होने लगा है। इस शास्त्र में अब इतना अनुभव हो गया है कि भाव घटाने-बढ़ाने में इसके ज़रिये काफ़ी हेर-फेर किया जा सकता है। यदि रुपये चलन में कम कर दिये जायं, यानी रुपये महंगे कर दिये जायं, तो चीज़ों के भाव घटेंगे और यदि चलन में रुपये बढ़ा दिये जायं, यानी लोगों को रुपये ज़्यादा मिलने लगें, तो चीज़ों के दाम बढ़ेंगे।

ब्याज की दर घटा-बढ़ाकर या बैंकों से रुपया उधार देने में रोक लगाकर व्यापार और उद्योग पर भी असर डाला जा सकता है। ब्याज की दर घटा-बढ़ाकर विनिमय करने में भी सुभीता किया जाता है। पिछले दिनों ब्रिटेन को विनिमय करने में तक-लीफ़ आई तो उसने ब्याज की दर बढ़ा दी और बाहरी देशों में उसे काफ़ी रुपये मिल गए और कुछ अर्से के लिए उसकी दिक़्क़त दूर हो गई।

कहते हैं, रुपया बहुत अच्छा गुलाम है, मगर बड़ा खतर-नाक मालिक भी है। यदि सावधानी न रखी गई, तो अपने पैदा करनेवाले को ही यह खत्म कर देता है।

यह है दाम और दमड़ी की कहानी। दाम के बल का इति-हास विशाल है। इस बल से बहुत-से काम सधते हैं। किन्तु इससे काम न बना तो निराश के लिए सूरदासजी ने बता ही दिया है :

अप-बल, तप-बल और बाहुबल,
चौथो बल है दाम।
सूर किशोर-कृपा ते सब बल,
हारे को हरिनाम—
सुने री, मैंने निर्बल के बल राम।

४

सत्य

रघुकुल-रीति सदा चलि आई।
प्रान जाय बरु बचनु न जाई॥

सत्यप्रतिज्ञ राम पिता की मृत्यु की भी चिन्ता त्याग पिता के वचन की रक्षा के लिए वन को चल पड़े। वचन भी ऐसा निभाया कि लंका जीतकर भी लंका नगरी के अन्दर नहीं गये। लौटे तो चौदह साल बाद ही अयोध्या लौटे।

'सत्य' शब्द का अर्थ है 'रहनेवाला'। सत्य सदा सत्य ही रहता है। इसकी कभी क्षति नहीं होती। पहले भी सत्य सत्य ही था, आज भी सत्य ही है और भविष्य में भी सत्य ऐसा ही रहेगा। महाभारत में इसलिए कहा है; "सत्य परब्रह्म है।" महात्मा गांधी भी ऐसा ही मानते थे, "सत्य ही ईश्वर है।"

एक-दूसरे के साथ व्यवहार वचन द्वारा ही होता है। किन्तु केवल मुंह से कहे गए वाक्य पर ही सत्य निर्भर नहीं है। मन, वचन और कर्म तीनों से जब सत्य का आचरण हो, तभी सत्य प्रतिष्ठित रहता है। युधिष्ठिर ने हाथी मारकर 'अश्वत्थामा हतः, नरो वा कुंजरो वा' दबी जबान से कहा। नतीजा यह हुआ कि उनका रथ, जो जमीन से ऊंचा चलता था, औरों की तरह जमीन पर चलने लगा। हिमालय पर महाप्रयाण के लिए गये तो हाथ की छोटी उंगली गल गई।

अंग्रेज़ विचारकों ने कहा है कि सर्वोत्तम पॉलिसी यानी नीति है सच्चाई (Honesty is the best Policy)। किन्तु हमारे शास्त्रज्ञ इससे कहीं आगे की बात कह गए हैं। उनके अनुसार सत्य से परे धर्म ही नहीं है। जो सच्चाई को पॉलिसी मानकर चलता है, उसका असत्य आचरण तो पहले ही हो गया। प्रकृति जैसे प्रगतिशील है, सत्य भी उसी तरह प्रगतिशील है। यह रूढ़ि की लकीर नहीं। जो एक लकीर को ही सत्य मानकर बैठ जाता है, वह झूठ को सत्य बनाना चाहता है।

आत्मा दिन-दिन आगे बढ़ने की कोशिश करती है और उसे हम यदि झूठे आवरण से ढक न लें, तो वह खुद-ब-खुद सत्य-प्रदर्शन करती रहती है। ईसाई सन्त एवर मोड ने कहा है कि सत्य तो हमारे साथ ही जन्म लेता है। इसे काटकर फेंकने के लिए हमें प्रकृति से युद्ध करना पड़ेगा। हाफ़िज़ ने कहा है कि सत्य तो गुलाब की तरह कँटीली डाल पर उगता है।

पर सत्य-पथ पर चलनेवाले न तो प्रकृति से युद्ध करते हैं और न गुलाब-जैसे फूल की कोमलता और सुगन्ध पाने के लिए उन्हें कांटों का भय रहता है। ईसा ने तो कांटों का ताज ही धारण कर लिया था।

सत्य के लिए किसी तैयारी की ज़रूरत नहीं पड़ती। झूठ तो बनाना पड़ता है। जो सत्य पर निछावर होता है, उसका नाम इतिहास के पट पर रह जाता है। बड़े-बड़े राजाओं की तो बात ही क्या, जुलाहे के घर जन्म लेकर कबीर अमर हो गए। चमार के यहां जन्म लेकर रैदास ब्राह्मणों से कहीं अधिक पूजित हुए।

पुरानी बात न लेकर इसी ज़माने में सत्य-पथ से विचलित

होनेवालों में मुसोलिनी, हिटलर और स्टालिन का नाम तो सामने

ही है। स्टालिन की गद्दी पर बैठनेवालों ने ही स्टालिन की ध्वजा उखाड़ दी।

महाभारत के 'शान्ति-पर्व' में नारदजी का यह कथन आता है :

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद् भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम॥

महाभारत-युद्ध राज्य के निमित्त हुआ। युद्ध न हुआ होता तो सिवा पांडवों के औरों की भलाई तो सम्भव ही थी। कम-से-कम लाखों की जीवन-रक्षा तो निश्चित ही थी। अर्जुन ने जब सगे-सम्बन्धियों को लड़ाई के मैदान में देखा तो लड़ने से आनाकानी भी की। उसने कहा :—

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते॥

—"यद्यपि ये सब लोग हमें मारने के लिए खड़े हैं, तब भी, तीनों लोकों के लिए भी, मैं इन्हें नहीं मारना चाहता। पृथिवी की तो बात ही क्या!"

किन्तु कृष्ण ने क्या यह बात मानी? उन्होंने कहा—"यह तुम्हारी दुर्बलता है। इसे छोड़ो और युद्ध करो।"

सत्य के आचरण पर ही सत्य निर्भर करता है। युद्ध की तैयारी दोनों तरफ़ कौरवों और पांडवों ने की। सारे सम्बन्धी और मित्र दोनों तरफ़ जुटे। रण में युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म है और विमुख होना अधर्म और असत्य है। ऐसे समय लाखों की जीवन-हानि भी हो तो भी युद्ध ही सत्य माना गया।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

यदि न बोलने से छुटकारा मिलता हो तो ठीक है; शेक्स-

पियर ने भी लिखा है, "विचारों को ज़बान पर न लाओ।" (Give thy thoughts no tongue), किन्तु विचार यदि प्रकट करने ही पड़ें और मौन से छुटकारा न मिले तो सत्य के लिए अप्रिय भी कहना पड़ता है।

हिमालय पर अर्जुन पहुंचा तपस्या करने और भगवान शंकर से पाशुपत अस्त्र लेने। शंकर ने भक्त की परीक्षा लेने की ठानी। मायावी शूकर पर अर्जुन और किरातराजरूपी शंकर, दोनों ने एक साथ वाण छोड़े। किरातराज की सेना शूकर को उठा ले जाने के लिए पहुंची। उधर अर्जुन अकेला। वाद-विवाद से बात शुरू हुई। अप्रिय का जवाब अप्रिय न दे तो मन की बात एक और वाणी से दूसरी, बात असत्य मानी जायगी। भारवि कवि आखिर अर्जुन से कहलवाते हैं:

"कहां मुझ-जैसा वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा करने में योग्य और कहां निकृष्ट जाति के जीवों की हिंसा में तत्पर तुम्हारा स्वामी! नीचों के साथ उच्च व्यक्तियों की मित्रता नहीं होती, क्योंकि हाथी शृगालों से मैत्री नहीं कर सकता।"

सत्य निबाहने के लिए मन, वचन और कर्म तीनों से सत्य-व्यवहार करना पड़ता है और सत्य-व्यवहार के लिए सत्य का अन्वेषण ज़रूरी है। इस इतने बड़े ब्रह्माण्ड में मनुष्यों की हस्ती ही क्या है? फिर सब मनुष्यों की समझ और बुद्धि भी एक-सी नहीं होती। किन्तु हरेक को सत्य किसी-न-किसी पहलू से दीख ही जाता है और अन्वेषणशील झूठ और सच को समझ लेता है। सत्यगामी वास्तविकता को देखकर, बिना द्वेष और आसक्ति के, उसका यथार्थ रूप समझता है और यथार्थ का ही अनुसरण करता है। ऐसे मनुष्य का सत्य भगवान निबाहते भी हैं।

५

संतोष

सभी कहते आ रहे हैं कि सुख सन्तोष में ही है, "सन्तोषः परमं सुखम्।" सन्तोष एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान दशा में ही सुख अनुभव करता है। किन्तु शारीरिक दशा क्या बराबर एक-सी रहती है ? पतझड़ के बाद नये पत्ते आते हैं। वसन्त के बाद ग्रीष्म ऋतु आती है। सुख और दुःख की जोड़ी है। एक-सी दशा पर भरोसा करना प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है। शास्त्र, विज्ञान और अनुभव सभी कहते हैं कि दशा या तो बिगड़ती है या सुधरती है।

अंग्रेज विद्वान कार्डिनल न्यूमैन ने लिखा है, "उत्पत्ति से ही जीवन का आभास होता है। बिना उत्पत्ति के जीवन ही नहीं।" और उत्पत्ति के बाद विनाश, यह अकाट्य है। उत्पत्ति बिना कर्म के हो नहीं सकती। दुनिया में यह स्वाभाविक ही है कि हर काम की उच्चता दिखाने के लिए मनुष्य एक नीति-सूत्र बना लेता है। इसी तरह अकर्मण्यता का पृष्ठपोषण करने के लिए लोग अक्सर मलूकदास का सहारा यों लेते हैं :

"अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहैं, सबके दाता राम॥"

अजगर भूखों नहीं मरता, न पंछी ही भूखों मरते हैं, यह तो सही है, किन्तु यह भी तो सत्य है कि सूर्योदय से पंछियों की

जमात खाना खोजने की तपश्चर्या शुरू कर देती है, जो सूर्यास्त तक जारी रहती है।

संत मलूकदास संतोष करके हाथ-पर-हाथ रखकर अकर्मण्य बनने का उपदेश नहीं दे गए। उनके जीवन से ही ज़ाहिर है कि उन्होंने जीवन-भर चाकरी ही की। थककर भी श्रम करना नहीं छोड़ा। पत्थर ढो-ढोकर उन्होंने धर्मशाला बनाई, बांध बांधकर तालाब बनाये और मृत्यु-पर्यन्त कुछ-न-कुछ करते ही रहे। पर अपने-आपको कर्त्ता नहीं माना, कर्त्तापन का अभिमान नहीं किया।

मनुष्य में महत्त्वाकांक्षा का होना अच्छा ही होता है। बिना आकांक्षा के कोई आगे नहीं बढ़ सकता। जितना काम अपनी शक्ति से बन पड़ता है, उतनी ही आकांक्षा फलीभूत होती है। यह सच है कि दूसरे की शक्ति से कोई ऊंचा नहीं चढ़ सकता। किन्तु कुछ लोग, जो आलस्य में पड़े रह जाते हैं, अक्सर आलस्य को छिपाने के लिए तुलसीदासजी तक को लपेट लेते हैं। तुलसीदासजी ने मंथरा के मुंह से कहलाया है :

कोउ नृप होहि हमहि का हानी।
चेरी छांड़ि न होउब रानी॥

लेकिन यही मन्थरा चाहती थी—एक की राजगद्दी छीनना और दूसरे को गद्दी पर बैठाना। यह काम भी उसने एक रानी के द्वारा ही कराया। फिर मन्थरा को 'चेरी' कैसे कहें, वह तो रानी पर भी हुक्म चलानेवाली हो गई ?

अर्जुन ने पूछा तो गीता में श्रीकृष्ण ने कहा :

तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।

अर्थात् कर्म-त्याग की अपेक्षा कर्म करना ही अच्छा है।

ग्रीक विद्वान अरस्तू से पूछा गया तो उसने भी बताया, "कर्म की अपेक्षा अकर्म को अच्छा कहना भूल है।"

चन्द्रमा पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है। पृथिवी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। नौ ग्रह नहीं, अड़तीस ग्रह दूरबीन से देखे जा चुके हैं, और वे अपनी-अपनी परिधि में घूमते हैं। सूर्य भी अपने से बड़े ब्रह्माण्ड के सूर्य की परिक्रमा करता है, यहांतक कि पृथिवी का एक-एक अणु भी स्पन्दन करता रहता है।

तो फिर 'सन्तोषी सदा सुखी' कैसे हो गया? इसका निबटारा महाकवि भास ने किया। वह कहते हैं, "कर्म करने में मूर्ख और ज्ञानी मनुष्य का शरीर तो एक-सा ही है, किन्तु बुद्धि में भिन्नता रहती है।" भास के मतानुसार संतोष बुद्धि से होता है, न कि कर्म का त्याग करने से। व्यवहारतः मनुष्य कर्म करना बन्द भी करदे तो भी शरीर काम करना नहीं छोड़ता। यदि छोड़ दे तो मृत्यु ही है। प्राण का अर्थ वायु होता है। वायु कभी अचल नहीं रहती, उसका तो स्वभाव ही चलना है।

गीता में श्रीकृष्ण ने सार बता दिया :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

बिना फल की इच्छा किये कर्म करने का तुझे अधिकार है। मतलब यह कि सन्तोषपूर्वक कर्म करना ही श्रेयस्कर है।

मलूकदास और तुलसीदास के कहने का भी यही आशय है।

गीता में सन्तोष की यही परिभाषा है :

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः॥

अर्थात्—जो संयमी और दृढ़निश्चयी है, जिसने अपने मन

और बुद्धि को मुझपर अर्पण कर दिया है, वह सदा सन्तुष्ट कर्म-योगी भक्त मुझको प्यारा है।

सन्तोष की मुट्ठी बन्द करने पर लालच वालू की तरह उंग-लियों में से फिसलकर गिर पड़ता है।

ऐसे ही सन्तोष की अवस्था में पूर्ण सुख है और संतोष की यही सच्ची व्याख्या है।

६

सुख

सुख की कोई परिभाषा नहीं बनी। न यही बताया जा सकता है कि सुख किसे कहते हैं और वह कैसे मिलता है।

किसीने बताया कि सुख प्रियतम के प्रेम में है। शायर ने कहा, "जिन्दगी की काली रात में प्यार ही एक चिराग़ है।" पतंगा शमा से प्रेम करता है, प्यार से उसके पास जाता है, एक क्षण भी प्यार का सुख ले कि जलकर खाक हो जाता है। प्रियतम के प्यार में विरहिणी का हाल कवि बिहारी ने इन शब्दों में बताया है :

> बिरह-ज्वाल जरिबो लखै,
> मरिबो भयौ असीस।

किसीने बताया कि सुख प्रियतम के प्रेम में तो है, किन्तु वह प्रियतम है दूसरा ही। उसकी भक्ति में ही सुख है। सुदामा से बढ़कर कृष्ण का कोई प्रिय और भक्त नहीं, किन्तु चल पड़ा दो मुट्ठी चावल लेकर द्वारका में कृष्ण का द्वार खटखटाने !

> भूखे भगति न होइ गोपाला।

दूसरे ने बताया कि आखिर सुदामा-जैसे संतोषी को भी द्वारका जाकर ही सुख मिला। आशय यह है कि सुख तो एक लक्ष्मी ही प्रदान करती है।

दस हजारवाले ने कमाकर बीस हजार इकट्ठे कर लिये तो

बहुत सुखी हो गया, किन्तु वापस पन्द्रह हो गए तो दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। दस से तो पन्द्रह भी ज्यादा ही हैं।

किसी कवि ने लिखा है :

> निःस्वो वष्टि शतं शती दशशतं,
> लक्षी सहस्राधिपो।
> लक्षेशः क्षितिराजतां क्षितिपतिः,
> चक्रेशितां वाञ्छति॥

दस से सौ और सौ से सहस्र, सहस्र से लक्ष और लक्ष से क्षितिपति, यों तृष्णा बढ़ती ही गई, तो फिर लक्ष्मी से भी सुख नहीं।

सुना कि लक्ष्मी तो पद के साथ, सत्ता के साथ रहती है। सुख भी राज-सत्ता ही देगी।

इन्द्र का आसन तो प्रायः डगमगाता ही रहता है। जहां किसीने तपस्या शुरू की कि इन्द्र भगवान डरे कि मेरा आसन छिना और चल पड़े तप में विघ्न डालने। राम-राज्य करनेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम राम के न तो पिता का अन्त शान्ति से, सुख से, हुआ और न वह स्वयं सीता के वियोग में सुखी रहे।

कवि ने आगे फिर कहा है :

> चक्रेशः सुरराजतां सुरपतिः,
> ब्रह्मास्पदं वाञ्छति।
> ब्रह्मा विष्णुपदं हरिः शिवपदं,
> तृष्णावधिं को गतः॥

जब इन्द्र ब्रह्मा का, ब्रह्मा विष्णु का और विष्णु शिव का पद प्राप्त करने की तृष्णा नहीं छोड़ते, तो फिर राजशक्ति में भी सुख कहां से आता!

७

दुःख

दुख में सुमिरन सब करें,
सुख में करे न कोय।

दुःख और सुख ये दो पहलू हैं। दुःख सुख है और सुख दुःख, यह तो माननेवाले पर निर्भर करता है।

झूठ, सच तौलने का पलड़ा है। दुःख मनुष्य की कसौटी है। बहादुर की बहादुरी इसीमें मालूम पड़ती है। कायर को यही कायर साबित करता है। उद्योगी का यही यश फैलाता है। इसी-से मनुष्य हिम्मत का पाठ पढ़ता है।

सम्पद्, आनन्द और सफलता, सब मोटे तारों से छिदे-गुंथे रहते हैं। इनमें से पार निकलना बहुत सरल है। पर दुःख मकड़ी के जाले से भी सूक्ष्म तारों से गुंथी हुई चलनी है, जिसमें से सबकुछ नहीं छन सकता। इसके पार तो सूक्ष्म वस्तु ही निकल सकती है।

दुःख एक घाव है, जिससे दिन-रात खून बहता है और जो केवल प्यार के मरहम से ही बन्द होता है, मगर फिर बहने के लिए; किन्तु इसमें पीड़ा नहीं होती।

हँसी-खुशी अनित्य हैं, इसलिए दुःख का ओहदा उनसे कहीं बढ़कर है। दुःख सुख से अच्छा राग सुनाता है। घोर अंधकार-पूर्ण मध्यरात्रि को प्रातःकाल और गरमी के धधकते हुए दोपहर

को सुहावनी संध्या बनाता है।

दुःख यद्यपि शत्रु कहलाता है, तथापि वह मित्रता का संदेश पहुंचाता है। दुःख केवल दुःख नहीं, एक सबक है, जो सुख का भविष्य दिखलाता है।

दुःख ज्ञान का दीपक दिखलाता है। जो संसार को जितना ज्यादा जानता है, उतना ही ज्यादा दुःखी है।

सुख मनुष्य के अस्तित्व को भुला देता है, क्योंकि मनुष्य नहीं जानता कि वह कहां है। दुःख सबक सिखाने आता है और सबक सीख लेना दुःख का अन्त है। यह मनुष्य को अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराता है।

जो दुःखी है, वह ज्यादा अक्लमन्द है; सहृदय है, साफ दिल वाला है। जो दुःख में पैदा हुआ है, उसकी नींव पक्की है, वह संसार को समझता है। जो दुःख को नहीं जानता, वह कोरा है।

दुःख मनुष्य को नवजीवन देता है। गिरते हुए को उठाता है। सोते को जगाता है। अन्धे की आंखें खोलता है। काम करने की शिक्षा देता है। मुक्ति का मार्ग बताता है।

जो दुःख की चलनी से छन गया, वह ईश्वर के बहुत निकट पहुंच गया।

दुःख को दुःख माननेवाला ईश्वर से बहुत परे है।

८

ईश्वर

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्

मेरे एक मित्र सुबह बैठे अखबार पढ़ रहे थे। दिन जाड़े के थे। पंडितजी भी तभी चारों तरफ़ चद्दर लपेटे आ बैठे।

"क्यों भैया, आज क्या नई बात है?" बैठते ही पंडितजी ने पूछा।

"लुमुम्बा मारा गया।" मित्र ने बताया।

"पक्की बात है?"

"हाँ, पक्की ही दीखती है।"

"किसने देखा उसे मारे जाते? तो, फिर कैसे मानें?" पंडितजी ने पूछा।

"रायटर के संवाददाता ने पूरी पूछताछ करके यह खबर दी है।"

"अच्छा, तो अब आप श्रुति-प्रमाण मानने लगे! उस दिन तो आप केवल आंख-देखी ही मानते थे।" पंडितजी ने व्यंग कसा।

बात यह थी कि 'ईश्वर' पर चर्चा चल रही थी। पंडितजी ने श्रुति-प्रमाण दिये कि 'ईश्वर' है। मेरे मित्र ने कहा कि वह तो आंख-देखी ही मानते हैं।

अभी उस दिन की बात है कि प्रोफेसर मार्टिन राइल छह

वैज्ञानिकों के साथ शोध करके इस नतीजे पर पहुंचे कि "ब्रह्माण्ड बनाया गया है, अपने-आप नहीं बना।"

पृथिवी अपनी धुरी पर १००० मील प्रति घण्टे की चाल से घूमती है। यदि वह गति घटकर १०० मील प्रति घण्टे की हो जाती तो हमारे दिन और रात इतने बड़े हो जाते कि दिन में तो सूर्य की गर्मी से सारी ही वस्तुएं जल जातीं, और बची-खुची रात को बर्फ में दबकर खत्म हो जातीं।

यदि सूर्य का तापमान जो अब है, उससे थोड़ा ज्यादा होता, तो पृथिवी पर कोई भी प्राणी ज़िन्दा न रह पाता। अब, हमें ठीक इतनी गर्मी पहुंचती है, जिससे हम बर्फ में जमकर खत्म न हो जायं। यदि चांद अब जहां है, उससे नज़दीक होता, तो समुद्र में इतना ज़्यादा ज्वार उठता कि वह सबको डुबो देता।

नामी खगोल विज्ञान-वेत्ता फ्रेड होयल ने हमारे देश के श्री जयन्त विष्णु नारलीकर के साथ शोध करके एक नई गणना की है। प्रत्येक पदार्थ प्रोटोन और न्यूटोन का बना होता है। पदार्थ में भेद केवल प्रोटोन की मात्रा न्यूनाधिक करने से होता है। जैसे; हाइड्रोजन में केवल एक प्रोटोन होता है। तीन प्रोटोन एक न्यूक्लियस में करते ही बैरिल्लियम धातु बन जाती है।

प्रोटोन की कमी-बेशी दबाव के साथ तापमान में कमी-बेशी करके की जा सकती है। ताप काफ़ी ज़्यादा मात्रा में, याने एक करोड़ डिग्री से भी ज़्यादा, देने पर ही प्रोटोन बढ़ाये जा सकते हैं। हाइड्रोजन से लोहा बनाने के लिए जितने प्रोटोन बढ़ाने होते हैं, उसके लिए तीनसौ करोड़ डिग्री का ताप पहुंचाना पड़ता है। लेकिन इतना ताप यदि दिया जाय तो हाइड्रोजन नहीं बन सकता।

इस तरह हाइड्रोजन से आक्सिजन बनाने के लिए भी दस करोड़ डिग्री ताप की ज़रूरत पड़ेगी। पृथ्वी पर हाइड्रोजन, आक्सिजन और लोहा इत्यादि सभी पदार्थ जब मौजूद हैं तो मानना होगा कि अलग-अलग दबाव और ताप पहुंचाकर ही ये पदार्थ बने हैं।

यह आकाश-गंगा अनगिनत तारों का समूह है। उसमें खरबों तो सूर्य हैं। औसितन हर सूर्य के पांच ग्रह हैं और पृथिवी भी है, जिनमें रहनेवाले मनुष्य से बहुत ज्यादा सभ्य और चतुर प्राणी भी हो सकते हैं। फोर्डहम-विश्वविद्यालय के डॉ० बरथोलोमेम्यू नेगी तथा डॉ० डगलस हेनेसी बहुत-से उल्कापातों की जांच करके इस नतीजे पर पहुंचे कि दूसरी पृथिवियों पर प्राणी अवश्य हैं। पृथिवी नित-नई भी बनती जा रही है। ऐसी आकाश-गंगाएं हज़ारों हैं और उनमें सूर्य भी इतनी दूरी पर हैं कि उनकी रोशनी पृथिवी पर पहुंचने में ६ अरब वर्ष लग जाते हैं। कम-से-कम ६ अरब वर्ष पहले वहां सूर्य थे, रोशनी पहुंचते-पहुंचते हट गए हों तो पता नहीं; किन्तु उससे भी दूर और सूर्य हैं, ऐसी धारणा है। फिर इतने बड़े ब्रह्माण्ड में छोटे-से मनुष्य की हस्ती ही क्या ? फिर भी, वह ईश्वर एक-एक छोटे-से-छोटे प्राणी की खबर रखता है और उसे पुकारने पर ज़रूर सहायता करता है।

यदि पृथिवी से बड़ी आकाश-गंगा के तारा-पुंज तक राकेट भेजा जाय और राकेट की चाल रोशनी की रफ़्तार के बराबर हो तो वहांतक पहुंचने में २० लाख वर्ष लगेंगे। पर उस राकेट में बैठनेवाले मनुष्य की आयु केवल ३४ या ३५ साल ही बड़ी होगी। आइनस्टाइन के मतानुसार उसके लिए समय की गति बिलकुल रुक जायगी।

पौराणिक आख्यान है कि एक बार नारदजी मारकण्डेय ऋषि से मिलने पहुंचे तो देखा कि पास में एक बालों का बड़ा ढेर लगा हुआ है। नारदजी ने जिज्ञासा की कि यह बाल कहां से आये। मारकण्डेयजी बोले कि ब्रह्मा रोज़ १०० वर्ष का होकर मर जाता है और रोज़-रोज़ पूरा क्षौर न कराकर मारकण्डेयजी एक बाल तोड़कर फेंक देते हैं। यह कहना मुश्किल है कि पौराणिक समय में समय की गति कम या अधिक हो जाने के बारे में उन लोगों को पूरा ज्ञान था या नहीं, पर यह निश्चय है कि ऐसे चमत्कारी ब्रह्मांड को बनानेवाले की महानता को समझना भी एक चमत्कार ही है।

बच्चा जन्मते ही दूध पीना सीख जाता है, उसे सिखाया नहीं जाता। मछली जन्म लेते ही तैरने लगती है। मादा भिड़ पतिंगे को डंक मारकर बेहोश कर देती है और उसे यत्न से रखकर उसके पास ही अण्डे देती है। अण्डों में से निकलनेवाले भिड़ को खाने के लिए पतिंगा तैयार मिलता है। मरा हुआ पतिंगा उनके लिए घातक होता है। छोटे भिड़ बड़े होकर फिर बच्चों के लिए यही करते हैं। उन्हें कोई सिखाता नहीं।

छोटा-सा तिलचट्टा ही लीजिये। वह दौड़ता है, तैरता है और उड़ता भी है। उसका शरीर ढाल से आच्छादित रहता है, फिर भी कुछ दिन भूखा रहे, तो शीशे की तरह उसमें आरपार देखा जा सकता है। उम्र उसकी मनुष्य से तीन गुनी होती है। बातचीत के लिए तिलचट्टों में रेडियो रहता है, जिसके द्वारा वे एक-दूसरे से बातें करते हैं।

मधुमक्खियों के बारे में तो काफी लिखा जा चुका है, किन्तु अभी आस्ट्रिया में एक प्रोफेसर ने पता चलाया है कि मधुमक्खियां

इशारों से बातें भी करती हैं।

रात को घूमनेवाला चमगादड़ तो रडार का जन्मदाता ही है। जब वह उड़ता है तो रडार से आवाज़ भेजता रहता है और सामने की अड़चनों का उसे तुरन्त पता चल जाता है। उसके शरीर में यदि रडार नहीं रहता तो टकराकर उसके प्राण कबके चले जाते।

हज़ारों तरह के पक्षी गर्मी में उत्तर की ओर चले जाते हैं और जाड़े में वापस दक्षिण में पहुंच जाते हैं। अलास्का से लाखों पक्षी उड़कर जाड़े में अफ्रीका आ जाते हैं। हर साल उनकी उड़ान होती है और ठेठ अपनी जगह पहुंच कर ही विश्राम लेते हैं। रास्ते में हज़ारों की तादाद में मरकर गिर जाते हैं, तब भी दूसरों की उड़ान जारी रहती है।

सबसे विचित्र कहानी है ईल मछली की। नदी या झील में कहीं भी पैदा हुई हो, यह मछली हज़ारों मील तैरकर बर्मुडा टापू के पास की घाटी में पहुंच जाती है। वहीं वह मरती है और बच्चे भी वहीं देती हैं। इन्हें बर्मुडा का नक्शा कोई नहीं बताता।

इन सबको समझनेवाला तथा नित-नई महिमा की खोज करनेवाला है मनुष्य। यह तो एक चलता-फिरता कारखाना है। मनुष्य के शरीर में मशीनें लगी हुई हैं। कहीं तेजाब बनता है कहीं आयोडीन, तो कहीं चीनी। हम लोग यूरिया बनाने के लिए लाखों का कारखाना बैठाते हैं, किन्तु मनुष्य-शरीर यूरिया निकाल-कर बाहर फेंकता रहता है।

यदि शरीर में चोट से कहीं घाव हो जाता है तो उसी वक्त मस्तिष्क में सिगनल पहुंच जाता है और होने लगती हैं तैयारियां घाव भरने की। खून का दबाव एकदम गिर जाता है। खून के

पिण्ड जल्दी बनकर खून गिरना रोका जाता है। यदि खून ज्यादा निकल गया तो स्प्लीन (तिल्ली) अपनी पूंजी में से खून तुरन्त शरीर में पहुंचा देता है। खून के सेलयों पानी में रहने के आदी होते हैं, किन्तु घाव पर हवा लगकर वे सूखने लगते हैं और सूखकर फट जाने से उनमें से खून वह चलने का भय रहता है। उधर बाहर से कीटाणु के भी अन्दर जाने का रास्ता खुल जाता है। पर सेल टूटते ही ऐसे रस उसमें से निकलते हैं, जिनसे रुई की तरह का पदार्थ, जिसे फाइब्रीन कहते हैं, पैदा होकर छिद्र बन्द कर देता है। दूषित कीटाणु मारनेवाले जन्तु पैदा होकर लड़ने के लिए तैयार खड़े हो जाते हैं। सफाईवाले आकर मुर्दा तन्तुओं की सफाई कर जाते हैं और मरम्मत करनेवाले सफ़ेद सेल मरम्मत का काम शुरू कर देते हैं। ऐसा आश्चर्यजनक 'मरम्मत-घर' वही बना सकता है।

किन्तु मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता है बुद्धि। उसी बुद्धि के सहारे आज वह स्थूल और प्राणी-जगत में सबसे काम लेता है और मालिक बना बैठा है। लेकिन इतनी प्रखर बुद्धिवाला भी मन के वश में होकर कभी-कभी ऐसे काम भी कर बैठता है, जैसा कि काम बुद्धिवाले पशु भी नहीं करते। भावावेश में ज्यादा बह गया तो मृत्यु का शिकार भी हो जाता है। ऐसे वक्त यह पता नहीं चलता कि उसकी बुद्धि कहां चली गई। इस प्रकार की रचना करने में भी उस शक्ति का कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होगा।

जब पृथ्वी ठंडी होकर रहने लायक बनी तो पहल-पहल अमीनो एसिड के बुदबुदे जगह-जगह पड़े थे। जीवन रूप में बस यही एक वस्तु थी। कैसे इन छोटे बुदबुदों से कहीं मछली, कहीं शेर, कहीं बन्दर और उससे बढ़कर मनुष्य भी बन गया!

और इस मनुष्य को पैदा करनेवाला शुक्र इतना छोटा होता है कि एक चम्मच में लाखों मनुष्यों को पैदा करनेलायक कीड़े आ सकते हैं। इस छोटे-से जन्तु में अलग-अलग मनुष्य की वाप-दादा की आदतें, बुद्धि, विकार सव उसके मस्तिष्क में भरे रहते हैं। जैसी आदत और बुद्धि शुक्र में रहती है, वैसा ही मनुष्य वह वनाता है।

सबसे बड़ा प्रमाण फिर यह भी है कि वच्चे को जैसे मां-वाप सान्त्वना देते हैं, वैसे ही यदि दुःख में कोई ईश्वर को याद करता है तो उसे शान्ति अवश्य मिलती है। भयानक-से-भयानक विपत्ति का भी मनुष्य सामना कर लेता है और ऐसे वक्त हिम्मत देती है अन्तःकरण से निकली हुई उसकी सच्ची प्रार्थना।

अमरीका के नामी जीवशास्त्री एलवर्ट विंचेस्टर कहते हैं कि सत्य का अनुसन्धान करनेवाला केवल एक ही नतीजे पर पहुंचता है। वह है ईश्वर में और भी गहन और पक्का विश्वास।

यह शक्ति केवल श्रुति ही क्या, विना आंखवाले के सामने भी प्रकट रहती है। 'इसे देखने के लिए आंख की ज़रूरत' नहीं पड़ती।

'ईश्वर है' इसका प्रमाण देना उस अज्ञेय शक्ति का निरादर करने-जैसा है।

९

'सम्भवामि युगे-युगे'

कल्प-कल्प प्रति प्रभु अवतरहीं।
चारु चरित नाना विधि करहीं॥

तुलसीदासजी ने यह शास्त्रों का मत बताया है। इसके पश्चात् निकला दुनिया के विकास का सिद्धान्त। लोकमान्य तिलक ने समझाया कि अवतार दुनिया के विकासवाद के ही प्रतीक हैं।

वैज्ञानिकों के मत से पहले-पहल जल-जन्तु हुए और उनसे दुनिया आगे बढ़ी। हमारे यहां भी पहला अवतार मत्स्य का हुआ—पानी का वासी। फिर हुआ कूर्मावतार, जल और थल दोनों पर चलनेवाला, फिर वाराह अर्थात जमीन पर रहनेवाला। इसके बाद नरसिंह, आधा मानुस और आधा पशु। मनुष्य का पहला रूप हुआ बावन, छोटा मनुष्य, तत्पश्चात् परशुराम, फिर श्रीराम, बारह कला के अवतार। कृष्णावतार में पूरी सोलह कलाएं आईं और यह था मनुष्य का पूर्ण विकास।

किन्तु शारीरिक विकास के साथ-साथ यह जानने की बात है कि बौद्धिक विकास भी होता ही है। धर्म की व्याख्या है कि जो धारण किया जाय, वह धर्म है। जो समाज के माने हुए नियम हैं, कानून हैं, बुरे-भले का ज्ञान है, वह है धर्म। जब-जब धर्म की क्षति होती है, तब-तब अवतार होता है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है :

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

—"जब-जब धर्म की ग्लानि, अर्थात, हानि और अधर्म की प्रबलता होती है, तब-तब मेरा अवतार होता है।"

विकास-सिद्धान्त के अलावा हम यों भी कह सकते हैं कि जब क्षत्रियों का अत्याचार बहुत बढ़ गया तो परशुराम ने जन्म लिया और उन्होंने क्षत्रियों के आधिपत्य का अन्त किया।

समाज में नियम-शृंखला ढीलीं पड़ी, तब श्रीराम का जन्म हुआ और उन्होंने लोक-मर्यादा स्थापित की। 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' इसीलिए वह कहलाये। श्रीकृष्ण ने गीता के द्वारा अर्जुन को कर्म-योग का उपदेश किया।

श्रीकृष्ण के बाद यज्ञों में नृशंस पशु-हत्याएं होने लगीं, लाखों प्राणी कटने लगे तो बुद्ध आये और उन्होंने अहिंसा का प्रचार किया। पीछे बौद्ध धर्म में भी अकर्मण्यता का विकार आ गया और तांत्रिकवाद ज़ोरों से फैलने लगा, तब आये शंकराचार्य और उन्होंने वेदान्त का डंका बजाया।

वेदान्त के नाम पर लोग जब अपने-आपको ही 'सोऽहं सोऽहं' का जप करते हुए ईश्वर मानने लगे तो भक्ति-युग का प्रादुर्भाव हुआ। मीरांबाई ने 'मेरे तो गिरधर गोपाल' की तान छेड़ी। संत तुकाराम आये। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के नाम की रट लगाई। सूरदास ने कृष्ण-लीला की मधुर झांकी दिखाई। वाल्मीकि ने राम को मनुष्य मानकर रामायण लिखी थी; किन्तु तुलसीदास ने राम को भगवान बना दिया और जगह-जगह राम-नाम की धुन गूंज उठी।

२

जगह-जगह छोटे-बड़े भक्तों ने, संतों ने, भक्ति-भाव जागृत किया और नास्तिकता का अन्त किया।

ईसाई भी मानते हैं कि ईसा का फिर से अवतार होगा। हिन्दू तो कल्कि अवतार की बाट ही देख रहे हैं। इस ज़माने में भी जब अंग्रेजी शासन से हिन्दुस्तान दबा पड़ा था, किसीकी मुंह खोलने तक की हिम्मत न थी, महात्मा गांधी आगए। उन्होंने सत्याग्रह का पाठ पढ़ाया। लोगों में हिम्मत आ गई, अपने देश को अपना देश और अपनी सभ्यता को उच्च सभ्यता समझने लगे, और उसके लिए गर्व भी करने लगे।

अवतार तो रोज़-रोज़, क्षण-क्षण में ही हो रहे हैं। जहां एक की क्षति हुई और दूसरी चीज़ ज्यादा बढ़ी कि उसको सम करनेवाला पैदा हो जाता है।

यों तो बहुत अर्से से लोग मानते आ रहे हैं पर श्री एण्डरसन और श्री ब्लैकेट दो बड़े विज्ञानविदों ने सन् १९३२ में बताया था कि हर वस्तु के विरोधी भाववाली वस्तु अवश्य होती ही है। किन्तु अब तो इस विषय पर काफ़ी शोध हो रहा है और वैज्ञानिक मानने लगे हैं कि जैसे शीशे में देखनेवाले का प्रतिबिम्ब उल्टा पड़ता है, वैसे ही शायद इस दुनिया की विरोधी दुनिया भी कहीं हो।

अणु में प्रोटोन और न्युट्रोन होते हैं और एलेक्ट्रोन उनके चारों तरफ़, ग्रह जैसे सूर्य के चारों ओर घूमते हैं वैसे घूमते रहते हैं। प्रोटोन में पॉज़ीटिव बिजली रहती है, और एलेक्ट्रोन में नैगेटिव। वैज्ञानिकों का कहना है कि नैगेटिव प्रोटोन और पॉज़ीटिव एलेक्ट्रोन भी होते हैं। जहां एक भाववाली वस्तु होती है,

वहां विरोधी भाव भी पैदा हो ही जाता है। इस तरह के 'चमत्कार गूढ़ प्राकृतिक सत्त्वों की सिद्धान्त रूप से समानता दिखाते हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पहाड़ भी बढ़ते हैं। किन्तु पहाड़ की चोटी पर हवा का वेग इतना होता है कि जितने वे बढ़ते हैं हवा उतना ही उन्हें घिस देती है और अन्त में ऊंचाई उतनी ही रह जाती है।

जहां नदी में बाढ़ आई और पानी बढ़ा कि पानी नीची ज़मीन की ओर आकर्षित होकर वह जाता है और फिर उसकी सतह समान हो जाती है।

कलकत्ते में, अलीपुर में, एक बाग है। अक्सर वहां रहनेवाले, जिनको टहलने का शौक़ है, सुबह टहलने जा पहुंचते हैं। एक बार देखा गया कि हठात इस बाग में स्थित तालाब में बहुत सारे केंकड़े हो गए। कुछ दिनों बाद देखा गया कि बड़े-बड़े चूहों ने तालाब के चारों ओर बिल बना लिये और केंकड़ों का विनाश करने लगे। जब केंकड़े खत्म हो गए तो चूहे बाग में नुकसान करने लगे। साग-भाजी बोई जाती तो बीज खा जाते। फूलों पर भी हमला करने लगे। मालियों के नाकोंदम आ गया। किन्तु एक दिन कई बिल्लियां आ पहुंचीं और लगीं करने चूहों का काम तमाम। धीरे धीरे चूहे गये, बिल्लियां भी गईं और फिर समभाव आ गया। आस्ट्रेलिया में घेरा डालने के लिए किसीने थौर लगाया। फिर थौर इतना बढ़ा कि खेत, गांव सब उजाड़, हज़ारों मीलों में फैल गया। अपने-आप ऐसे कीड़े पैदा हो गए कि उन्होंने थौर को खा-खाकर उसे ख़त्म कर दिया।

ठण्ड में, हिम के कारण, पेड़ों की जब बुरी हालत हो जाती

है तो वसन्त आकर उन्हें बचाता है। गर्मी से लोग व्याकुल होते हैं तो वर्षा आकर सुख पहुंचाती है। रात के बाद दिन हो ही जाता है, यहांतक कि यदि आंख में मिट्टी का कण पड़ गया तो पानी का फव्वारा अपने-आप आंख में चल पड़ता है और आंख धुल जाती है। शरीर पर कहीं चोट लगी, घाव हो गया तो सफेद कार्पसल अपने-आप पैदा हो जाते हैं और घाव को भरना शुरू कर देते हैं।

देश में जगह-जगह राजाओं का राज्य था। राजाओं के अत्याचार बढ़े तो उपद्रव शुरू हुआ और प्रजातन्त्र आया। प्रजातन्त्र कुछ न कर सका तो अनन्य शासक आये। जहां उन्होंने धांधली की, वहां वे भी उठ गए।

धर्म की ग्लानि नहीं बढ़ सकती। बढ़ी कि अवतार आया। क्षण-क्षण, दिन-दिन अवतार होते हैं, और होते रहेंगे। भगवान की लीला यही है।

१०

वह पूंजीपति !

पूंज्री—धन का अर्थ संस्कृत में है 'दधन्ति, फलन्ति'। जो फलनेवाली चीज़ है, वह है धन। धन-धान्य, फलनेवाले वृक्ष, सभी धन हैं ! जिसके पास ऐसा धन है, वह पूंजीपति है। किन्तु आज का अर्थ तो उस आलोच्य व्यक्ति से है, जिसने वाणिज्य में कुछ पूंजी इकट्ठी कर ली हो।

चाहे वकील बड़ा धनपति हो, या अच्छी प्रैक्टिसवाला डॉक्टर, जिसने वहुतों से ज्यादा पैसा इकट्ठा किया हो, किन्तु ये दोनों ही निन्दनीय पूंजीपति नहीं हैं। आज वही पूंजीपति कहलाने का अधिकारी है, जो व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर आराम से रहता हो।

खासकर विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के छात्रों में इस प्रकार के विचार वहुत प्रवल देखने में आते हैं। विश्वविद्यालय का स्नातक चाहे कितना ही तीव्र बुद्धिवाला क्यों न हो, उसके मतानुसार व्यवसाय करना बुरा समझा जाता है। यह एक तरह की रूढ़ि-सी बन गई है कि भले आदमी वाणिज्य-व्यवसाय नहीं किया करते। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी' यह बात अमान्य है। उसका मानना है कि हाथ से काम करके जैसे हाथ मैले होते हैं, वैसे ही वाणिज्य से आत्मा पर मैल चढ़ता है। यद्यपि यह मत प्रकट कम किया जाता है, तथापि उसकी चाल-ढाल पर इस का

असर रहता है।

यदि किसी कारणवश उनको व्यवसाय करना भी पड़ता है तो मानते हैं कि कामचलाऊ ढंग पर वाणिज्य करना चाहिए। व्यवसाय को वैज्ञानिक ढंग से, सुचारु रूप से करना बड़प्पन नहीं है। वे पंचतन्त्र की इस सूक्ति के पूरे ख़िलाफ हैं:

यत्रोत्साह समारम्भो यत्रालस्यविहीनता।
नयविक्रमसंयोगस्तत्र श्रीरचला ध्रुवम्॥

—"जहां उत्साह से नये-नये कार्यों का आरम्भ किया जाता हो, आलस्य का कहीं नाम भी न हो, जहां नीति और पराक्रम का भी कार्य-प्रणाली में योग हो, वहां लक्ष्मी अवश्य अचल रहती है।"

उनके मतानुसार बजाय व्यवसाय में फलीभूत होने के, किरानी बनना कहीं अच्छा है, क्योंकि व्यवसाय की सफलता उनका पतन कर देगी।

कहते हैं, छोटा-सा जानवर नेवला बहुत अन्वेषणशील होता है। उसकी खोज दिनभर जारी रहती है और वह चूहों और सांपों के बिल खोज-खोजकर निकालता रहता है। हमारा ख़याल है कि अंग्रेज़ लेखक किपलिंग ने पहले-पहल लिखा था कि नेवला-परिवार का नारा है—"जाओ और खोजो।" किन्तु ऐसा अन्वेषण करनेवाले बहुत कम होते हैं। एक सफल व्यवसायी दिनभर नये-नये विचारों और कामों की खोज में लगा रहता है, जिससे कि उसका काम और सुचारु रूप से हो।

वह गुरु बनाने से नहीं झिझकता। उसका एकमात्र ध्येय होता है उत्तरोत्तर उन्नति करना, इसलिए नई बात सीखने में उसे हिचक नहीं रहती।

व्यवसायी जन्मपत्री पर विश्वास नहीं करता, उसका कर्म-पत्री पर अटल भरोसा रहता है। वह दुनियां को समझने की बराबर इच्छा रखता है; क्योंकि बिना इसके व्यवसाय में सफलता नहीं मिलती। रोग बढ़े तो डाक्टर पनपता है, झगड़ों में वकील की बन आती है? किन्तु व्यवसायी का तो स्वप्न यह है:

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

किन्तु इन सदिच्छाओं का स्वप्न लेते हुए भी आखिर वह लोटीका का ही पात्र है।

११

नर बड़ा, या नारायण ?

उस दिन बात चल रही थी कि कोई-कोई नेता ही ऐसा होता है, जिसका लोगों पर जादू चलता है। बात यह है कि जब-तक आम लोग यह नहीं देखते कि उनका नेतृत्व करनेवाला उनकी तरह ही एक नर है, इन्सान है, तबतक उन्हें श्रद्धा-भक्ति तो होती है, किन्तु उत्साह नहीं होता। उनपर पूरा जादू नहीं चलता।

होली के दिन थे। डफ़ पर गीत चल रहा था, "ब्रजमंडल देस दिखादे रसिया, ब्रजमंडल।" मेरे मित्र ने कहा, "खूब है अबकी होली की धूम !"

"हर साल होली ऐसे ही होती है। अपने-अपने मन के भावा-नुसार कभी कम दीखती है, कभी ज्यादा।"

बचपन से देखता हूं, शायद ऐसी ही होली बराबर होती है। किसी साल मन प्रसन्न रहा तो वह दौड़ता है उसमें भाग लेने, नहीं तो अक्सर लोग अपने-अपने विचारों में लीन रह जाते हैं।

इतने में एक घर से ग्रामोफोन-रेकार्ड की सुरीली आवाज़ आई, "कृष्ण मुरारी विनती करत कर हारी।"

पहली रात को जब होली मंगलाने गये तो बड़े-बूढ़े जयकार कर रहे थे, "मोर-मुकुट-वंशीवाले की जय !"

प्रह्लाद को भगवान ने होली की गोद से बचाया था। उस

भगवान को चाहे विष्णु कहो, चाहे राम या कृष्ण। किन्तु जयकार विशेष रूप से मोर-मुकुट-वंशीवाले की क्यों ? कीर्तन और भजनों में भी कृष्ण-लीला ही गाई जाती है।

महाराजा मनु ने वृद्धावस्था में घोर तप किया। भगवान प्रसन्न हुए, दर्शन दिया। वर माँगा मनु ने "चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभुसन कवन दुराउ।" भगवान ने 'तथास्तु' कहा और उसी दिन अंकित हो गई इक्ष्वाकु-वंश की महत्ता, उच्चता।

इक्ष्वाकु-वंश में हुए भी बड़े-बड़े व्यक्ति, जिन्होंने एक-से-एक बड़े कार्य किये। महाराजा सगर ने ३२००० वर्षतक तपस्या की। उसी वंश में हुए भगीरथ, जिन्होंने गंगा को मृत्युलोक में ला उतारा। तबसे गंगा का नाम भी 'भागीरथी' हो गया।

इसी कुल में हुए राजा दिलीप, जिन्होंने गुरु की गाय के बदले अपना शरीर सिंह के अर्पण कर दिया। महाप्रतापी रघु हुए, जिनकी बात सदा अटल रही और दशरथ के रूप में हुआ महाराजा मनु का अवतार। ऐसे जगत-उजागर वंश में जन्मे राजा राम।

वसुदेव यादव-कुल के एक राज-घराने के थे। किन्तु कुल का कोई शील और पहचान नहीं। न तो इस कुल का वैसा इतिहास ही लिखा गया, न उसमें ऐसे प्रतापी राजा ही हुए और न भगवान ने किसीको वर दिया कि वह यादव-कुल में जन्म लेंगे।

जब धरती पर रावण का अत्याचार बढ़ा, तो देवताओं ने रक्षा की प्रार्थना की। भगवान ने मनु को दिया हुआ वरदान याद करके देवताओं को आश्वासन दिया कि "मैं स्वयं अवतीर्ण होकर तुम लोगों की रक्षा करूंगा।"

कृष्ण-जन्म के लिए न तो देवताओं ने वैसी प्रार्थना की और

न भगवान ने किसीको वैसा वरदान ही दिया। हां, कंस ने अन्तरात्मा की पुकार ज़रूर सुनी कि "देवकी के गर्भ से तुझे मारनेवाला पैदा होगा।" किन्तु उस अन्तर्वाणी का उसपर उल्टा ही असर पड़ा।

भगवान् ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया, किन्तु न स्वर्ग में दुन्दुभि वजी, न फूलों की वर्षा हुई। भगवान राम का नामकरण ब्रह्मा के पुत्र महामुनि वसिष्ठ ने किया। कृष्ण विना नामकरण के केवल वासुदेव ही कहलाये।

राम-जन्म की बधाई गाते-गाते लोग नहीं अघाये। महाराजा दशरथ के आनन्द-उल्लास का तो कहना ही क्या था!

कृष्ण के जन्मते ही वेचारे वसुदेव को उस काली भयावनी रात में छिपकर गोकुल जाना पड़ा और जन्म का पता चलते ही खुशी मनाई गई एक निरीह वालिका की वलि से। चीत्कार कर उठी वह वालिका, "रे पापी! तेरा मारनेवाला तो पैदा हो चुका।" कंस ने यह सुनकर सारा राग-रंग वन्द करा दिया।

रामचन्द्र बड़े हुए। माता-पिता का मन हुलसने लगा। राजा का महल किलकारियों से गूंज उठा। पर वालक कृष्ण को देखिये। पूतना चुपचाप स्तन-पान कराकर वाल-वध का वीड़ा लेकर आई। जहांतक और लोगों का सम्बन्ध था, वह सफल भी रही। हां, कृष्ण ने स्वयं ही अपनी रक्षा की, वह दूसरी वात है।

जहां राम के मुंह से एक वात निकली, माता कौशल्या ने दो काम पूरे कराये। कृष्ण तो इसी मिन्नत करने में रहे, "मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।" या "मैया, मोहिं दाऊ वहुत खिझायो।"

महर्षि विश्वामित्र ने यज्ञ-कार्य सम्पन्न करने के लिए महा-

राजा दशरथ से मांग की राम को साथ ले जाने की। महाराजा इन्कार कर गए। यदि विश्वामित्र की जगह कोई और होता तो बात वहीं खत्म हो जाती। राम ने ताड़का का वध किया। मारीच राक्षस को दूर फेंक दिया तो महर्षि फूले न समाये और इस बात का मिथिला तक प्रचार किया।

कृष्ण ने नन्द बाबा की गायें चराते-चराते बकासुर को भी खत्म कर दिया। और भी छोटे-मोटे कई राक्षस मारे, किन्तु कहीं कोई खास चर्चा नहीं चली।

राम के गुरु थे ब्रह्मा के पुत्र महाज्ञानी वसिष्ठ और उन्हें धनुर्विद्या सिखाई राजर्षि से ब्रह्मर्षि होनेवाले महान मुनि विश्वामित्र ने, तहां कृष्ण को विद्या सिखानेवाले थे उज्जैन के सीधे-सादे ऋषि संदीपन।

राम ने रावण का वध किया भारी वानर-सेना लेकर, बड़े-बड़े यशस्वी नायकों के साथ। और कृष्ण ने अपने बड़े भाई बलराम के साथ जाकर अकेले ही कंस को दे पटका। न तो उनके साथ कोई सेना चली, न कोई नायक।

बलराम को और कोई हथियार न मिला तो हल लेकर ही निकल पड़े और 'हलधर' कहलाने लगे। राम के साथ चलते थे कई धनुष और सैकड़ों बाण, पर कृष्ण की अंगुली पर तो एक चक्र ही रहता था।

राम पहुंचे मिथिलेश की नगरी में। राजा जनक से लेकर छोटे-से-छोटे भी प्रार्थना कर-कर मनाने लगे कि किसी तरह शिव-धनुष हलका बन जाय। जबतक धनुष-भंग नहीं हुआ, सभी वहां चिन्तित रहे।

यहां रुक्मी, खास रुक्मिणी का भाई, यह नहीं चाहता था

किकृष्ण रुक्मिणी का नाम भी ले।

जैसे ही धनुष भंग हुआ, सीता ने माला पहनाई। महाराजा दशरथ बारात सजाकर जनकपुर पहुंचे। बड़े उत्साह और उत्सव के साथ विवाह हुआ।

कृष्ण को घरवालों का सहयोग कहां, उनसे लड़ाई लड़नी पड़ी। रुक्मिणी को रथ में बैठाकर द्वारिका को दौड़े, विवाह का उत्सव मनाना तो दूर।

सती-साध्वी सीता, फिर गर्भवती। ऐसी पत्नी को केवल लोकापवाद के डर से देश निकाला दे दिया राम ने। स्वप्न तो दूर की बात, उससे भी परे, जिस स्त्री के परिधानों की भी परपुरुष की हवा न लगी हो, ऐसी सीता की दुःख-गाथा का क्या कहना!

द्रौपदी पर-स्त्री, जिसके पांच पति, उसकी आधी पुकार पर ही सबकुछ छोड़कर कृष्ण दौड़ पड़े। मुंह पर लगा विदुर का साग भी न पोंछ पाये। चीर उसका बढ़ाया तो ऐसा कि खेंचते-खेंचते दुःशासन जैसा वीर भी थककर चुपचाप बैठ गया।

राजा राम महान् थे। चौदह साल भरत ने उनकी खड़ाऊं सिंहासन पर रखकर राज्य चलाया।

युधिष्ठिर ने यज्ञ किया। कृष्ण को काम सौंपा गया अतिथियों के पैर पखारने का और जूठी पत्तलें उठाने का। बड़ी लगन से उन्होंने यह कर्त्तव्य निभाया।

सत्यप्रतिज्ञ राम के जैसा कोई दूसरा नहीं हुआ। व्रत निबाहने में पिता की भी मृत्यु हो गई, किन्तु सत्य का व्रत पूरा पाला।

कृष्ण अर्जुन के सारथी बने। शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा कर बैठे थे, किन्तु जब भीष्म ने न माना, तो भक्त की प्रतिज्ञा के सामने अपनी बात भूल गए और उठा लिया उंगली पर चक्र।

राजा राम भगवान थे, और भगवान की बड़ी भक्ति से पूजा होती है। आदर से लोग मस्तक नवाते हैं और जय-जयकार करते हैं। भगवान कृष्ण नारायण थे, पर हो गए नर और सबके रोम-रोम में रम गए। नर ने सबके दिल में घर बना लिया।

"रघुपति राघव राजाराम" की धुन खूब चलती है। पर "होरी खेलत नन्दकुमार" गाकर होली के दिनों में लोग एकदम मस्त हो जाते हैं।

भक्त नम्रता से पाठ करता है, "पतित पावन सीताराम।" किन्तु मीरां तो पागल ही हो गई, "मेरे तो गिरधर गोपाल" में।

कृष्ण कन्हैया की जय बोलकर, "अबकी टेक हमारी, लाज राखो गिरधारी" में भक्त अपना हृदय निकालकर रख देता है।

"प्राण जाय बरु वचन न जाई" ऐसे सत्यप्रतिज्ञ राम कुल बारह कला के अवतार थे। सत्य की मर्यादा का बखान करते-करते भक्त नहीं थकता। किन्तु ज्ञानी पैठता है "प्रजहाति यदा कामान्" में, और मनुष्य पहुंच की पराकाष्ठा पर पहुंचने की कोशिश करता है। महाभारत चारों तरफ ज़ोर से चलता है और यहां सोलह कलावाले कृष्ण के बताये हुए ज्ञान के कणों से कुछ बचाव होता हो, तो हो।

चाहे होली का खिलाड़ी हो, या भक्ति-रस में डूबा हुआ पागल, चाहे मीरां विरहिणी का गीत हो, चाहे हिमालय में सब त्यागकर "सुख-दुःखसम" समझनेवाला वैरागी, नर सबके रोम-रोम में ऐसा रम गया कि बिना जाने ही कहीं-न-कहीं याद आ ही जाता है। कहीं-न-कहीं एक तंतु बज ही उठता है। देवता की आज्ञा से लोग मृत्यु की राह चले जाते हैं। किन्तु नर के साथ वह अपने-आप हँसते हुए मृत्यु के घाट उतर जाते हैं। वह तो उनके

साथ उन्हींकी तरह रहकर उनके रोम-रोम में रम जाता है।

तब यह सच ही कहा है—

> हमने माना हो फ़रिश्ता शेख़जी,
> इन्सान बनना तो मगर दुश्वार है।

१२

सजग गुरु

कहते हैं कि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु बनायें थे। जहां भी किसीसे कुछ सीखने को मिला, उन्होंने सीखा।

पृथिवी से उन्होंने धैर्य, क्षमा और परोपकार सीखा। पृथिवी सबकुछ सहन करके भी प्रति-शोध की भावना नहीं रखती। सभीको कुछ-न-कुछ प्रदान ही करती रहती है।

वायु ने सिखाया जरूरत से ज्यादा संग्रह न करना। वायु एक जगह से दूसरी जगह वस्तु पहुंचा तो देती है, किन्तु अनचाही वस्तु उसमें टिकती नहीं, गिर पड़ती है।

आकाश ने शिक्षा दी अलिप्त रहने की। बादल, धुआं या भाप आकाश के ऊपर पर्दे की तरह आच्छादित होते हैं, किन्तु आकाश को अपने में लिप्त नहीं करते।

इसी तरह मधुमक्खी से सीखा दूसरों के निमित्त काम करना याने शहद इकट्ठा करना।

और नन्हें-से बच्चे से स्वच्छ निर्विकार हृदय रखना सीखा।

मतलब यह कि जहां किसीमें महिमा देखी, उन्होंने उसे ग्रहण कर लिया।

हमारा गुरु तो निरन्तर सामने ही रहता है। ऐसा अथक गुरु बड़े भाग्य से मिलता है। न उसे सोने की फ़ुर्सत और न विश्राम की। वह गुरु है प्रकृति।

प्रकृति कभी निठल्ली नहीं बैठती। चौवीसों घण्टे काम में जुटी रहती है। शीतकाल हो या ग्रीष्म, वर्षा हो या वसन्त, काम उसका बराबर जारी रहता है।

भूकम्प आया, हरी-भरी फुलवाड़ी उजाड़ गया। पर उसके ख़त्म होने के पहले ही प्रकृति ने फ़िर सिरजन शुरू कर दिया। बाढ़ आई और सबकुछ बहा ले गई, पर सर्वनाश के पहले ही फिर से काम शुरू हो गया। और शायद वह नाश किसी मतलब से, लाभ पहुंचाने के लिए ही, किया हो! यह कितनी बड़ी शिक्षा है कि प्रकृति क्रियोहीन कभी नहीं होती।

हमें मुंह एक मिला है, पर कान दो, इसलिए कि बातें कम करें और सुनें ज्यादा। जीभ एक है, पर हाथ दो हैं, इसलिए कि हुक्म कम दें, पर काम ज्यादा करें। खानेवाला पेट एक, और चलने के लिए पांव दो। कूटकूटकर प्रकृति यही बताती है, कम लो और दो ज़्यादा।

आम का पेड़ किसीसे कुछ नहीं चाहता, पर बिना मांगे आम खिलाता है। उसे ख़ुराक के लिए खाद की भी जरूरत नहीं पड़ती। पतझड़ में पत्तियां गिरकर खाद बन जाती हैं, वही खाद उसके लिए काफ़ी होती है।

मां का स्तन तो एक बड़ी चमत्कारी कारीगरी है। इसके भीतर १५-२० दूध पैदा करनेवाले पेड़ हैं। बिना जड़वाले इन पेड़ों का तना स्तन-मुख में आकर एक हो जाता है। यह १५-२० तने दूध भरने के बड़े टोकने हैं। दूध को तने में पहुंचाने और उसे इकट्ठा करके रखने के लिए इस पेड़ की शाखाएं भी बना दी गई हैं और इसके पत्ते दूध पैदा करते हैं।

बच्चा पैदा होने पर पहले-पहल स्तनों से पीला-पीला शर्बत-

सा निकलता है, जो बच्चे के लिए जुलाब का काम करता है। यह बच्चे के पेट में इकट्ठे कफ, आंव सब साफ़ कर देता है। साथ ही, इस शर्बत में एक तरह का पदार्थ रहता है, जो बच्चों की रोगों से रक्षा करने में मदद करता है। तीन-चार दिन बाद खांटी दूध निकलने लगता है, जो बच्चे के लिए आदर्श खुराक है। जब बच्चा बड़ा होता है और उसे ज़्यादा दूध की ज़रूरत होती है, तब अपने-आप दूध ज़्यादा पैदा हो जाता है। प्रकृति भरसक रक्षा के साधन जन्म के साथ ही पैदा कर देती है।

पहला घोड़ा दस इंच ऊंचा था, उसे बचाव करने में कठिनाई होती थी। प्रकृति ने धीरे-धीरे आकार बढ़ाकर उसे आज का घोड़ा बना दिया, और वह मनुष्य के लिए उपयोगी भी हो गया।

मछली से बना बन्दर और फिर मनुष्य, मगर कम अक्लवाला। बिना तीव्र बुद्धि के इसका निर्वाह कठिन था। प्रकृति ने इसका दिमाग़ विकसित किया, और मनुष्य-जाति इसीलिए फलीफूली।

किन्तु उन्नत होने के लिए स्वयं प्रयत्नशील बनना पड़ता है। यह बात पूर्ण सत्य है कि चाहनेवाला इतना ऊंचा चढ़ सकता है कि स्वयं ईश्वर से एकाकार हो जाय।

प्रकृति प्रगतिशील है। जिसने भी प्रगति में बाधा दी, या पिछड़ गया, वह खत्म हो गया। कई डिनोज़र-जैसे महाकाय पशु दुनिया से समाप्त हो गए। गगनचुम्बी 'डोडो' खत्म हो गया, पर उसका छोटा भाई 'दन्ती कबूतर' अब भी बचा हुआ है। रेंगनेवाले कुछ बड़े पशुओं ने प्रकृति का साथ दिया, जो आज भी मगरमच्छ और घड़ियाल के रूप में जीवित हैं।

प्रकृति का एक बड़ा नियम है, सतत प्रगतिशील रहना। मनुष्यों की दौड़ में भी जो समयानुसार प्रगति नहीं करता, वह पिछड़कर वहीं-का-वहीं रह जाता है। प्रयत्नहीन की रक्षा प्रकृति नहीं किया करती है।

मस्तिष्क के अलावा मनुष्य का एक और बड़ा गुण है। वह है भावना में बहनेवाला जन्तु। भावना में बहकर उसने प्रकृति को दूसरे रूप में भी देखा और उसके अन्तर से निकल पड़ी कविता की रस-धारा। तितलियों के रंग-विरंगे पंख देखकर चल पड़ी उसकी कूंची और पैदा कर दिये वैसे ही विविध रंग। गुलाब की कोमल पंखुड़ी देखकर भावनामय मनुष्य ने बनाया वैसा ही नरम चमकीला मखमल।

प्रकृति से सीखा विज्ञान भी। मनुष्य की बुद्धि दौड़ने लगी, जब उसने देखा एक छोटा-सा चौतरफ़ा घूमनेवाला फ़ोटू खींचने का कैमरा। दोनों आंखें अपने-आप वस्तु को देखकर लेंस केन्द्रित कर लेती हैं, और मस्तिष्क फोटो देख लेता है।

चमगादड़ को उड़ते देखा तो खोज होने लगी रडार की। डोलफीन मछली बड़ी तेज़ चाल से पानी में दौड़ लगाती है और तीस फ़ुट तक एकदम मैले पानी में देख भी लेती है। मनुष्य ने सोचा, क्यों न पनडुब्बी बनाई जाय।

रैटल सांप अपने दुश्मनों के पास उसके तापमान द्वारा रास्ता खोजकर पहुंच जाता है। जहां से कोई भी निकला, उसकी गरमी चाहे कितनी ही कम हो, वहां रह जाती है। यह सांप एक डिग्री के हज़ारवें भाग तक की गरमी को माप लेता है, और उसी गरमी के अन्दाज़ से रास्ता खोजकर दुश्मन तक पहुंच जाता है। वैज्ञानिकों ने इससे सीख लिया और बनाई फुंदी बनाना, फुंदी गरमी के

माप से खोज निकालकर दुश्मन के विमान तक पहुंच जाती है, और उसे नष्ट कर देती है।

मिस्टर और मैडम क्यूरी ने देखा किसी-किसी धातु में एक चमकीला पदार्थ, जो अंधेरे में भी जुगनू की तरह चमकता रहता है। उन्होंने खोजा तो मिला 'रेडियम', जो कैंसर-जैसी घातक बीमारी में बड़ा उपयोगी सावित हुआ।

जाड़े में शिथिल होकर कई जन्तु पड़े रहते हैं। उनमें केवल जीवन रहता है, वाकी क्रियाएं लगभग वन्द हो जाती हैं। इससे डॉक्टरों ने सीखा मनुष्य को वर्फ़ द्वारा लम्बी निद्रा में सुलाना। फेफड़े या मस्तिष्क में ऑपरेशन करने के लिए यह आविष्कार बहुत सफल हुआ।

अव मनुष्य अपनी सबसे बड़ी देन अपने निज के मस्तिष्क की नकल करने के प्रयत्न में संलग्न है। कुछ छोटे विजली के मस्तिष्क वने भी हैं, जो कई कठिन गुत्थियां सुलझा लेते हैं। जितना ज्ञान आजतक मनुष्य को प्राप्त हो गया, उतना यदि इस मस्तिष्क में भर दिया जाय तो विना विशेष प्रयत्न के वह भावी संतति को मिल जायगा। पर इस मस्तिष्क में ज्ञान उतना ही होगा, जितना मनुष्य जानता है।

इंग्लैंड के डॉक्टर ग्रेवाल्टर ने एक विचित्र कछुआ वनाया है। इसके अन्दर रखी बैटरी से वह उनकी प्रयोगशाला में चक्कर काटता रहता है। सामने अड़चन आने पर अपने-आप बचकर निकल जाता है और बैटरी में बिजली कम होने पर लौटकर अपने घर में घुस जाता है। घर में लगे स्विच से बैटरी में विजली भर जाती है और कछुआ बाहर निकलकर फिर चक्कर लगाना शुरू कर देता है। यह सब होता है, पर डॉ० ग्रेवाल्टर की करा-

मात से ही।

मनुष्य जैसा होता है, उसकी भावी संतति वैसी ही बनती है। स्वभाव, आदतें, बहुत-कुछ अपने मां-बाप से मिलती हैं। जो प्रयत्न करके आगे बढ़ गया, वह खुद भी चढ़ गया और अपनी सन्तान को भी एक बड़ी पूंजी सौंप गया। प्रयत्न करनेवाले की प्रकृति सदा सहायता करती है।

प्रकृति दृढ़ निश्चयवाली है। अपनी पकड़ जल्दी छोड़ती नहीं। संसार में दृढ़ निश्चयवाला मनुष्य ही ऊंचा उठता है।

प्रकृति सजीव है। चारों तरफ सजीव पदार्थ भरे पड़े हैं। यदि पदार्थ सजीव नहीं होते तो मनुष्य का भी सजीव रहना असम्भव था। मनुष्य का भी सबके साथ उतार-चढ़ाव होता है। यदि वह उनका साथ न दे, तो गिर जायगा। वह उन साथियों के साथ दौड़ता रहकर ही सजीव रह सकता है।

प्रकृति ठगना नहीं जानती। वह सीधा रास्ता दिखाती रहती है। उसकी महिमा चारों ओर बिखरी पड़ी है। बस, आंखें खोलकर देखने भर की ज़रूरत है। इस सीधे रास्ते पर हम चलें तो न जवानी की भूल हो और न बुढ़ापे का क्षोभ।

कवि ने गाया, 'गुरु बिन कौन बतावे बाट'। सजग गुरु तो साथ ही है, उसे पूछते रहें तो बाट कोई भूलनेवाला नहीं।

१२

कथा-कहानी

कहानी कहना तो एक शास्त्र हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समय में लाखों कहानियां लिखी गईं और प्रकाशित भी हुई होंगी। कोई-कोई उनमें काफी ऊंचे दर्जे की भी हैं, जो हमारे थके-मांदे मस्तिष्क को रोज़मर्रा के झंझट और उनसे होनेवाली जटिलताओं से दूर शान्त वातावरण में पहुंचा देती हैं।

उपन्यासों, छोटी कहानियों और कल्पनात्मक विवरणों ने आज के समाज में अपना एक स्थान बना लिया है, क्योंकि वे जीवन में होनेवाले संघर्षों और उनका समाधान करने की तरफ़ मन को केन्द्रित करते हैं। यहांतक कि जीवन-मार्ग में मिलनेवाले गर्तों की सूची पहले ही तैयार कर लेते हैं और उनसे आगाह भी कर देते हैं। किन्तु नियति फिर भी भविष्य को छिपाकर रखती है। दुर्दैव आता है, पर उसे अवश्यम्भावी मान लिया गया है।

साहित्य में इस कला का खास स्थान है, क्योंकि यह चरित्रों के माध्यम से जीवन के चिरन्तन मूल्यों के प्रति लोक-मानस में आस्था के भाव भरती है। व्यक्ति और समाज का सच्चा अंकन तो कहानियां ही करती हैं। युग की गति, उसके आचार-विचार का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। साहित्य आखिर लोक-जीवन का एक दर्पण ही है।

भारत तो प्राचीन साहित्य का अक्षय भंडार है और कथाएं इतनी प्राचीन, जितनी यहां पाई जाती हैं, और कहीं शायद ही मिली हों। यों तो मनुष्य में ज़रा भी समझ आते ही वह मन-बहलाव के लिए कितनी ही घटित घटनाओं का वर्णन करने लगा होगा, पर अन्तरिक्षीय ज्ञान कथा के रूप में समझाने के लिए मस्तिष्क का पूर्ण विकास होना जरूरी है।

ऋग्वेद में इस तरह की कथाएं मिलती हैं। त्वष्टा और इन्द्र में वैर था। त्वष्टा ने अपने पुत्र वृत्र को युद्ध के लिए भेजा। वह घोर गर्जन करता हुआ आया। इन्द्र ने वज्र से मारकर वृत्र को धराशायी कर दिया। त्वष्टा आदित्य या सूर्य को कहते हैं। वृत्र मेघ का नाम है। मेघ गर्जना करता आया। इन्द्र ने वज्र-प्रहार से अर्थात विजली से मारकर वर्षा कर दी। ऋग्वेद का युग आज के पुरातत्त्वज्ञ ६००० वर्ष पहले का मानते हैं। इतने प्राचीन काल में भी प्रकृति के रहस्यों को कहानी कहकर समझाना उस समय के ऊंचे सांस्कृतिक स्तर का द्योतक है।

वेदकाल के बाद की कहानियों में भी आदर्श की गहराई आज से कहीं अधिक थी।

शंख और लिखित दो भाई थे। इन दोनों ऋषियों के अलग-अलग सुरम्य आश्रम थे। लिखित ऋषि एक दिन बड़े भाई के आश्रम पर पहुंचे तो शंख ऋषि कहीं गये हुए थे। लिखित को भूख लगी और वह भाई के उद्यान से फल तोड़कर खाने लगे। शंख ऋषि जब लौटे, तो देखकर सन्न रह गए। उन्होंने लिखित को बताया कि विना आज्ञा लिये फल खाने से उसे चोरी का पाप लगा और वह राजा के पास जाकर इस अपराध का दण्ड ले। लिखित राजा के पास गये और राजा से दण्ड का विधान करा-

कर दण्ड लिया।

आजकल के उपन्यास और कहानियों में नायक का चरित्र-चित्रण जोरों से बदलता जा रहा है। मध्यकालीन समय की उलझनें और वैचारिक क्रान्तियां आज से काफी भिन्न थीं। उन कथाओं का नायक गहन आत्मविश्वास से परिपूर्ण मिथ्यावाद और अन्याय को ललकारकर उनसे युद्ध करता रहता है। उसमें दुष्टों द्वारा दी गई सब तकलीफ़ों को सहन करने की अदम्य शक्ति होती है। सब बाह्य बुराइयों से युद्ध करते रहने के लिए उसका पौरुष मचलता रहता है और अन्ततक वह अपना यह लक्ष्य बड़ी खूबी से निबाहता है। वह उदार, सत्य और न्याय-पथ पर चलनेवाला होता है। पर कई आधुनिक कहानियों में केवल नायक का मतलब सिद्ध कराना ही उनका सफल अन्त होता है, चाहे सिद्धि वह कैसे ही हो।

प्राचीन कथा का उद्देश्य होता था केवल समाज का चरित्र-गठन। जो काम चरित्रवान पुरुषों के लिए वर्जित था, वह कहानी में भी किसी से नहीं कराया जाता था। यहां तक कि दुरात्मा अधर्म के रास्ते पर चलते हुए भी मन में सदात्मा से भय खाते थे।

इतिहास किसी शक्तिशाली के जीवन में घटित घटनाओं का तिथि मानचित्र ही होता है। पर साधारण मनुष्य के असली मानचित्र का पता तो कहानी-साहित्य से ही लगता है। मनुष्य की अनेक-रूपता तो आदिम सृष्टि से ही चली आ रही है, किन्तु उसके साथ-साथ आदर्श में परिवर्तन, चरित्रों की ऊहापोह, मानसिक असन्तुलन और उसकी जटिलताएं कैसे-कैसे बढ़ती आ रही हैं, इसका यथेष्ट चित्रण कथा-साहित्य करता है। पाठकों की

जिज्ञासा को तीव्र करने के लिए कहीं-कहीं घटना-वैचित्र्य भी पैदा करना पड़ जाता है, पर कुल मिलाकर वह जीवन की विचित्रता से अधिक विचित्र नहीं होता।

कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' रचा। राजा दुष्यन्त आखेट करने जाते हैं, शकुन्तला को देखते हैं, उससे विवाह होता है, ऋषि कण्व शकुन्तला को विदा करते हैं। यहांतक तो कहानी सीधी चलती है। इसके आगे रास्ते में राजा की दी हुई मुद्रिका नदी में गिरकर एक मछली के पेट में चली जाती है। यहांपर कथाकार ने एक वैचित्र्य पैदा कर दिया। फिर तो बिना मुद्रिका के दुष्यन्त शकुन्तला को पहचानते भी नहीं हैं। शकुन्तला को देख कर राजा के अन्तःकरण में कुछ आवाज़ जरूर उठी। कालिदास ने कहा :

> रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
> पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः
> तच्चेतसा स्मरतिनूनमबोधपूर्वं
> भावस्थिराणि जननांतर सौहृदानि ॥

अर्थात—रम्य वस्तुओं को देखकर और मधुर शब्दों को सुनकर जो मनुष्य बेचैन हो उठता है, वह अबोधपूर्वक जन्म-जन्मान्तर के स्थायी भावों का स्मरण करता है।

यह आज के मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए एक प्राणोदित साहित्य है। विवाह करने जैसी बात हठात दुष्यन्त कैसे भूल गया? कालिदास ने राजा की बात का पोषण किया है कि उसका अन्तःकरण कुछ बता रहा था, पर दुर्वासा ऋषि के शाप ने उसकी मति में भ्रम पैदा कर दिया। पर यह कहना कठिन है कि यह बात मनोवैज्ञानिक के गले उतरेगी कि नहीं।

जर्मनी में इसी युग में फ्रायड नाम का एक बड़ा मनोवैज्ञानिक शास्त्री हो गया है। वह इस शास्त्र का पूरा अध्ययन और शोध करके इस नतीजे पर पहुंचा कि कभी-कभी चेतन मन जो बातें याद नहीं कर सकता वह अचेतन मन कर लेता है। इस सिद्धान्त के बाद मन रोगी को हिप्नोटाइज करके, मन की बात जानकर, उसका इलाज करना बहुत सहल हो गया। फ्रायड के कथनानुसार केवल इसी जन्म की बात अचेतन मन याद करता है। पर कालिदास ने तो किसी युग में ऊपर के श्लोक में वर्णित कर दिया कि अबोध मन जन्म-जन्मान्तर की बातें याद कर लेता है। ऐसी खूबियों से ही लेखक चमकता है।

आधुनिकतम कहानियां तो चलती ही मनोविज्ञान पर हैं। किसी पात्र के जीवन में कोई समस्या उठती है या घटना घटित होती है, उसका पात्र पर क्या असर पड़ता है और उसका स्वभाव, रहन-सहन, चरित्र के कुछ पहलू कैसे बदल जाते हैं, इसका बड़ी खूबी से उल्लेख होता है। मनोवैज्ञानिक आज होनेवाली घटनाओं का विश्लेषण करते हैं।

इस चमत्कारी दुनिया में चमत्कारों पर ही मनुष्य पनपता है। यदि जीवन में उतार-चढ़ाव न हो तो मनुष्य-जीवन में आनन्द ही न रहे। कितने आविष्कारों का श्रेय कदाचित इन घटना-वैचित्र्य पैदा करनेवालों को हो। यह न भी हो तो काल्पनिक विचित्रता की अनोखी सूझ तो है ही।

वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों ने राम की पुष्पक-यात्रा का वर्णन किया है। कालिदास ने भी रघुवंश में इसका उल्लेख किया है। आस्था रखनेवालों ने इसे दैवी चमत्कार कहकर मान लिया। नास्तिक ज़रा मुंह बिचकाकर हँस दिये। पर उस ज़माने

में यह कोई मानने को तैयार न था कि आम लोग भी किसी दिन विमान में यात्रा करेंगे। अमरीकी सेना ने ऐसे एक वायुयान का प्राथमिक निर्माण कर लिया है, जो ३६०० मील की रफ्तार से उड़ेगा। ऐसे विमान को लंका से अयोध्या पहुंचने में एक घंटा भी न लगेगा।

महाभारत में उल्लेख मिलता है आग्नेय वाण चलाकर आग लगाने का। आज की फ़ौजों में (फ्लेम थ्रोअर) आग की झल फेंकनेवाली तोपें रहती ही हैं और वरुणास्त्र तो आज नहीं हैं, पर यह प्रयत्न बड़े जोरों से चल रहा है कि उड़ते बादलों को पकड़कर उन्हें बरसा दिया जाय।

देव और गन्धर्व एक लोक से दूसरे लोक में आते-जाते ही थे। आधुनिक विद्वान लेखक एच० जी० वेल्स ने अपने पात्रों को चन्द्रलोक में भेजा। पर अब यह स्पष्ट दीखता है कि पांच-सात वर्ष में मनुष्य सचमुच में चन्द्रलोक पहुंच जायगा।

लेखक जुल्स वर्न ने पचास साल पहले वर्णन किया था समुद्री आवास का। समुद्र के तल में लोग रहेंगे, समुद्र से खराक भी मिलेगी। अणु की बिजली से सब काम होगा। अब ये बातें सम्भव-सी लगने लगीं। अडोलस हक्सले ने तो बोतलों में बच्चे पैदा करके सृष्टि रचना की भी कल्पना कर डाली।

न्यूटन ने सेब के गिरने से आकर्षण शक्ति का अनुमान लगाया था। पर उसका अनुमान केवल सेब जैसे ठोस पदार्थ तक ही सीमित था। किन्तु आइंस्टाइन ने यह भी साबित कर दिया कि प्रकाश और हवा पर भी इस आकर्षण-शक्ति का प्रभाव पड़ता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य की विचार-शक्ति की परिधि बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसका चरित्र भी गहन और जटिल होता

जाता है। वह प्रकृति के रहस्यों को जानकर प्रकृति के उस अंग पर अधिकार कर लेता है। यह प्रयत्न निरन्तर जारी हैं, किन्तु मनुष्य का यह अन्यतम ध्येय या चरम लक्ष्य नहीं है। ध्येय मनुष्य का रहता है मनुष्य पर विजय पाना और सारी कथाओं का अन्त यही होता है।

जो कहानी केवल अपने नायक को ही देखती है और उसके आस पास के वातावरण से ही सन्तोष कर लेती है वह अधूरी रह जाती है। नायक का सीधा सम्बन्ध चाहे न भी हो, तब भी है वह जीव उस सारी पृथिवी का ही, और पृथिवी का विकास निर्भर करता है उस सारे विराट ब्रह्मांड पर, जिसे हम अतिलौकिक भी कहते हैं। श्रेष्ठ लेखक अपनी कल्पना की उड़ान में अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में उस सारी प्रगति को कुशलता के साथ व्यक्त कर देता है। उस ज़माने में जब विज्ञान में पहुंच नहीं थी, तब इसका समाधान चमत्कार के रूप में होता था। जैसे बिना डैने के पक्षी उड़ नहीं सकता, वैसे ही बिना इस प्रगति के सम्मिश्रण के पात्र का पूरा चित्रण नहीं होता। इसलिए कथाकार पूरा कुशल न हो तो पात्रों का यथार्थ स्वरूप अंकित नहीं कर पाता। उसका नायक भी छिपा ही रह जाता है, किन्तु कथाकार को परखनेवाला पाठक अच्छा कुशल हो, तभी उत्तम कृतियां बन पाती हैं।

१४

भ्रमण

यात्रा पर जाना भी किसी पाठशाला में जाकर शिक्षण लेने से कम नहीं है। फिर पृथिवी की सीमा लांघकर कोई इतना भाग्यशाली हो कि वह बाहर की महिमा देख सके तो फिर कहना ही क्या !

अन्तरिक्ष का भ्रमण करनेवालों ने देखे विशाल भू-भाग, उनके लम्बे-लम्बे तट और प्रचण्ड लहरों से हिलहिलाते समुद्र, नीले जल की झील की तरह प्रशान्त। कहीं-कहीं तो ज़मीन पर टिमटिमाते प्रदीप भी दीख पड़े। इनपर गहरे काले परदे से चमचमाते तारों की फुलझड़ी वरस रही थी। उनमें से एक जॉन ग्लेन ने देखा कि उसके यान की खिड़की पर जुगनू के माफ़िक पर उससे प्रखर पीले-हरे रंग की चमकवाले कुछ दल आकर जमा हो गए। वे थे पानी की भाप के अणु, जो विद्युत से सचेत होकर अन्तरिक्ष में घूम रहे थे। देखकर वह आत्म-विभोर हो गया। चन्द मिनटों में अंधेरा ग़ायव, फिर चिलचिलाती धूप निकल पड़ी और साथ ही आग का एक तप्त बड़ा गोला। अब समुद्र की तरफ़ बिना काले चश्मे के देखना असम्भव हो गया। यकायक चांद की शीतल चांदनी छा गई। इस तरह के मनोरम अद्भुत दृश्यों में अन्तरिक्ष यात्री खोये-से रह गए।

ऐसे दृश्य सब लोकों में घूमनेवाले देवर्षि नारद ने तो नित्य

ही देखे होंगे। उन्होंने इसके अलावा देखी होगी शत-शत आकाश-गंगा। इन सैकड़ों आकाश-गंगाओं में हमारी जैसी पृथिवी भी है और उनके सूर्य भी अलग-अलग हैं। नक्षत्र भी उनके अलग, जो उनके साथ-साथ प्रदक्षिणा करते हैं। पर नारद ने तो इससे भी ज्यादा देखा होगा, जिसे हमारे वैज्ञानिक अभी-अभी खोज पाये हैं 'क्वासार'। ये हैं भीमकाय आग के गोले, जो हमारी पृथिवी से करीब छह अरब प्रकाश-वर्ष परे हैं। रोशनी की चाल से आधी चाल पर हमसे अब भी दूर जा रहे हैं और इनका तेज तो हमारे सूर्य से एक खरब गुना अधिक है। यह हम जानते ही नहीं कि इनकी पृथिवी कितनी बड़ी होगी और वहां कैसे-कैसे प्राणी रहते होंगे। इस भीमकाय ब्रह्मांड में कितने ही तारे नष्ट-भ्रष्ट होते और कितने ही जन्म लेते रहते हैं।

नारद वह है, जो परमात्मा विषयक ज्ञान देता है, अथवा जल-तत्व देता है। इन दोनों गुणों से युक्त 'मेघ' गर्जन के साथ-साथ हरि-गुणगान करता अन्तरिक्ष में घूमता-घूमता ऐसे महान दृश्यों को देखता रहता है।

कदाचित् कालिदास को भी इसी नारद से 'मेघदूत' रचने की प्रेरणा मिली हो। मेघ विन्ध्याचल से उतरते सामने ही एक वल्मिकी के ऊपर से जवाहिरात के ढेर की तरह चमकते इन्द्र-धनुष को छोड़कर हिमालय की ओर बढ़ जाता है। रास्ते में जब मेघ गर्जन करता है, तो देखता है सैकड़ों हंसों की पंक्ति, जो चोंच में कमल की पंखुड़ियां दबाये साथ-साथ उड़कर मान-सरोवर की तरफ बढ़ रही है। पथ के अनेक दृश्य यक्ष उसे पहले ही से बताकर आगाह कर देता है। बिना इस प्रदेश में घूमे कालिदास इतने कमाल से उन दृश्यों का वर्णन नहीं कर सकते थे।

२

देवी भागवत में कहा है कि अन्धकारमय जगत में भ्रमण, सूर्य के समान, अज्ञान अन्धकार का निवारक है। पुलस्त्य ऋषि ने भीष्म को बताया कि भ्रमण करने से राजा विजय पाता है, वैश्य धन प्राप्त करता है, शूद्र की इच्छाओं की पूर्ति होती हैं, और ब्राह्मण ज्ञान से परिपूर्ण हो जाता है।

दुनिया में जगह-जगह चमत्कार भरे पड़े हैं। अंग्रेज़ी में 'गलीवर' की 'बिलादिये' मनुष्यों के देश की यात्रा की कहानी, बच्चे बड़े चाव से पढ़ते हैं। बिलादिये मनुष्य तो आजकल कहीं नहीं मिलते हैं, पर बौनी जातियां अफ्रीका में मिलती हैं। कहते हैं, ये बौने दुनिया में सबसे पहले पैदा होनेवाली मनुष्य-जातियों में से हैं। हां, सबसे पहला मनुष्य-भेष में अवतार भी बौना ही तो था।

मनुष्य को समझना हो तो भ्रमण से बढ़कर और कोई तरीका ही नहीं। ब्रिटेन का राज्य महारानी विक्टोरिया के ज़माने में इतना बड़ा था कि यह कहावत बन गई थी कि इस राज्य में सूर्यास्त कभी नहीं होता। पर इस राज्य के रहनेवाले ऐसे कि यदि एक सप्ताह भी आमने-सामने की सीट पर यात्रा करते रहें तो बिना किसीके परिचय कराये एक-दूसरे से दो-चार शब्दों के सिवा और कोई बात भी न करेंगे। हां, यदि पहचान करा दी गई हो तो समय बहुत आनन्द से कटेगा। एक तरह से अंग्रेज पक्के सनातनी हैं। चाहे मज़दूर सरकार हो या 'टोरी', दोनों दो-सौ, तीनसौ साल पुरानी रस्में अब भी उतने ही ज़ोर-शोर से अदा करती हैं। कहते हैं, 'बुलडाग' (कुत्ता) यदि दांतों से कुछ पकड़ लेता है तो उसे मरने पर ही छोड़ता है। अंग्रेजों की

पकड़ भी वैसी ही है। एक बात निश्चय कर लेने पर, जल्दी उसे छोड़ते नहीं।

उधर कहीं बारह-बारह सौ फुट ऊंची अट्टालिका में रहने-वाले अमरीकी से भेंट हो गई तो अन्ततक बातों का तांता न टूटेगा। अमरीकी 'असम्भव' शब्द को ही नहीं मानते। उनके लिए 'असम्भव' कुछ भी नहीं है। फ्रांसीसी अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपने देश के सामने और सबको हेय समझते हैं। इसलिए वह बाहर की कोई भी बात जल्दी नहीं अपनाते।

ऐतिहासिकों के मतानुसार यूरोप में डेनमार्क सबसे पुराना राज्य है, यहांतक कि हज़ार साल पहले यहां के राजा गोर्म के एक पौत्र ने इंग्लिस्तान पर भी विजय पाई थी। यह छोटा-सा राज्य आज भी समृद्धशाली है। जैसे अमरीकी को मोटर पर वैसे यहां के बाशिन्दों को साइकिल पर घूमना बहुत प्रिय है, और यहां की सुन्दरियों को सिगरेट के बदले सिगार का धूम्रपान ज्यादा पसन्द है।

अपने यहां भारत में ही दक्षिण की यात्रा बहुतों ने की होगी। यहां के लोग कड़ा परिश्रम करनेवाले होते हैं। संस्कृत में उच्चारण करने में हर शब्द के अन्त का 'अ' न बोला जाय तो वह हलन्त हो जाता है। जैसे आमतौर पर लोग उच्चारण करते हैं 'शिव्', किन्तु शुद्ध उच्चारण होगा 'शिव'। दाक्षिणात्य अंग्रेज़ी का उच्चारण भी इसी तरह करते हैं जैसे 'वर्ड्ऽ' (शब्द)। इधर शेखावाटी में रुपया 'रिपिया', खजूर 'खिजूर' बन जाता है। पर ग़लत-सलत बोलकर इन लोगों ने उद्योग में इतनी उन्नति कर ली है कि सारे हिन्दुस्तानवाले इनका लोहा मानने लगे हैं। पहली पीढ़ी में साहस अदम्य था, सैकड़ों मील ऊंटों पर यात्रा

करके प्रायः सारे हिन्दुस्तान में फैल गए। शंकराचार्य तो संन्यासी होकर छोटी उम्र में ही भ्रमण करते रहे। चारों दिशाओं में उन्होंने चार धाम स्थापित किये। कम-से-कम इन धामों की यात्रा करनेवाले अपने देश को तो जान लेते हैं।

ब्रिटेन का उत्तरी भाग, स्काटलैंड, इंगिलस्तान से एकदम अलग है। यहां के सुहावने दृश्यों, वनस्पतिपूर्ण पहाड़ों और बड़ी-बड़ी मनमोहक झीलों के पास रहकर यहां के बाशिन्दे भावुक हो गए। पर भावुक होकर भी व्यापार में बड़े कुशल हैं। सब लोग पारिवारिक फ़िर्कों में बंटे हुए हैं और फ़िर्कों के अगुवा का आज भी पूरा प्रभाव है।

डेनमार्क के कुछ दक्षिण में हालैण्ड देश है। यहांवाले बड़े किफ़ायती और मेहनती, पक्के व्यापारी हैं। वसन्त ऋतु में हालैण्ड के मुकाबले में मुग्ध करनेवाला दूसरा देश यूरोप में शायद ही हो। मीलों तक यहां की ज़मीन एकदम स्वच्छ, सफ़ेद से लेकर प्रायः काले रंगवाले और मोतिया से लेकर गहरे बैंगनी रंग के ट्यूलिप फूलों से खचाखच भर जाती है। केवल इस दृश्य को देखने लाखों यात्री दूर-दूर से आते हैं।

आर्कटिक सागर में भ्रमण करनेवाले कहते हैं कि वहां की सुन्दरता की होड़ दूसरी जगह कर नहीं सकती और वहां का ध्रुवी भालू तो एक अनोखा प्राणी है। जवान भालू का वज़न प्रायः १६०० पौंड तक होता है, फिर भी वह बर्फ़ के तैरते टुकड़ों पर फांद-फांदकर २५ मील प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ लगाता है और समुद्र में ६ मील की रफ़्तार से तैरता है। कभी-कभी तैरते-तैरते १५ फ़ुट लम्बी उछाल मारकर मछली पकड़ लेता है।

ईश्वर की महिमा यह है कि ऐसी विकट ठंड के बीच में

स्पिट्सवरगेन नाम का पांच टापुओं का एक समूह है। वहां गर्मी में फूल भी खिलते हैं, और पेड़ भी उगते हैं। तापमान यहां गर्मी में ७० डिग्री तक हो जाता है। कहते हैं, किसी ज़माने में यहां बहुत बड़ा जंगल था। अब यहां से कोयले निकलकर रूस और नार्वे जाते हैं। गर्मी में यहां की आबादी ३५०० तक हो जाती है।

पूर्व में हिन्द-चीन किसी ज़माने में बहुत बड़े शक्तिशाली राजा का राज्य था। पुराने ज़माने का यह कम्भोज का राज्य सन् ८०० से लेकर १४०० ई० तक समृद्धिशाली और प्रतापी था। अंग्कोर के विष्णु के विशाल वैभवशाली मंदिर की तुलना केवल बैबल की मीनार से ही पश्चिम के पुरातत्त्वज्ञ करते हैं।

इस दुनिया में विस्मित करनेवाले स्थानों का रोमांच लोगों को भ्रमण में खींच ले जाता है। नील नदी के उद्गम की खोज में हजारों ने जान गंवाई। दक्षिणी अमरीका की अमेजान नदी के उद्गम-स्थान का पता सदियों तक किसीको न लगा। इस नदी का सभी कुछ विशाल है। ३९०० मील लम्बी नदी का उद्गम-स्थल ही २७० लाख वर्ग मील है।

दक्षिण अफ्रीका के पास हिन्द महासागर में एक बड़ा टापू है 'मैडागास्कर'। इस टापू के अफ्रीका के किनारे पर होते हुए भी यहां के बाशिन्दे जावा निवासियों की सन्तान हैं। यहां जावा से कब और कैसे लोग आकर बसे और अफ्रीकी क्यों नहीं आये, यह कोई नहीं बता सका।

दक्षिण अमरीका में कई जगह इंका राज्य के अवशेष आज भी मिलते हैं। इंका जाति के मंदिर हिन्दू मंदिरों से मिलते-जुलते हैं। इनपर हिन्दू सभ्यता का असर कैसे और कब पड़ा, यह कोई

नहीं जानता।

भ्रमण में रोमांच के अलावा इतिहास और भूगोल का गहरा ज्ञान भी अति सरलता से सीखा जाता है। बिना भ्रमण के मनुष्य एक तरह से कूपमंडूक ही बना रह जाता है। उसकी अक़्ल पर रोगन नहीं लगता। पर आज वैज्ञानिकों का दावा है कि भविष्य अन्तरिक्ष यात्रियों का है। विना दूसरे लोकों में गये यह दुनिया पिछड़ जायगी।

१५

सुराज

यह वांछनीय है कि स्वराज्य सच्चे अर्थों में सुराज्य हो, और यह स्वाभाविक है कि स्व के क्षेत्र में 'कुत्सित' को स्थान क्यों दिया जाय ? इसलिए स्वराज्य का फलितार्थ 'सुराज्य' ही होगा। स्वराज्य अगर कुराज्य है तो वस्तुतः उसे स्वराज्य नहीं कहा जा सकता ।

महात्माजी ने तो स्वराज्य की मांग करते-करते कई बार दोहराया है कि वह अंग्रेज़ी सेना को भारतीय सेना से बदल देने को स्वराज्य नहीं मानते । उनका स्वराज्य तो रामराज्य है और 'रामराज्य' बिना अपने ऊपर अनुशासन किये विकसित नहीं हो सकता । रामराज्य तो केवल लोगों की नैतिक सत्ता से ही शासित होता है । वही पूर्ण स्वतन्त्रता है ।

राजस्थान में कहते हैं, "राजा तो रामचन्द्र और सब रजैया हैं ।" रामराज्य की महिमा आज भी इतनी बनी है कि आते-जाते, मिलते-जुलते लोग 'रामराम' कहकर राम की जयजयकार मना देते हैं ।

राम-वनवास में चौदह साल भरतजी ने राज्य-शासन बड़ी खूबी से चलाया । लोग सब प्रकार से सुखी थे, समृद्ध थे। भरत राजा की धाक भी इतनी थी कि अयोध्या के पास से गुज़रने में निशाचर भी डरते थे। आखिर वह राज्य तो राम का ही था।

राम लौटकर सिंहासन पर बैठे तब तुलसीदासजी ने रामराज्य की महिमा बखानी :

रामराज बैठे त्रैलोका, हरषित भये गये सब सोका।
दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज नहिं काहुहि व्यापा॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीड़ा, सब सुन्दर सब निरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना, नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥

ऐसे ही रामराज्य की महिमा गाई जाती है, जिसमें न दैहिक, न दैविक, न भौतिक ताप किसीको रहे; न अल्पमृत्यु हो, न कोई बुद्धिहीन हो अर्थात सब लोग स्वस्थ हों, सुशिक्षित हों, चतुर हों, धन-धान्य से सम्पन्न हों।

जैसे मेघ बरसते समय यह नहीं देखता कि जमीन ऊसर है या उपजाऊ, उसी तरह रामराज्य में ऋद्धि-सिद्धि बिना भेद-भाव सबके घर-घर पहुंच जाती है। आगे तुलसीदास ने बताया कि :

"सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी"

(सब दम्भरहित, धर्मपरायण पुण्यात्मा हैं।)

"लता बिटप मांगे मधु चवहीं"

(लता और वृक्ष मांगते ही मधु टपका देते हैं।)

"प्रगटीं गिरिन्ह विविध मनि खानी"

(पर्वतों ने मणियों की खानें अपने-आप प्रगट कर दीं।)

लोग अपने-अपने धर्म में रत रहते थे। पेड़, लताएं, ऋतु अनुसार खूब फलती थीं और खनिज पदार्थों की भी कोई कमी न थी। जड़-चेतन सब अपना काम पूरा करते थे।

'दंड जतिन्ह कर' केवल संन्यासियों के ही हाथ में दंड रह गया था। दंड से राज्य-शासन नहीं चलता था। अंग्रेजी में कहा

वत है कि कम-से-कम शासन ही उच्चतम शासन है। दंड देने में या सैंकड़ों कानूनों द्वारा शासन करने में आखिर हिंसा का भाव एक तरह से रहता है। क्षात्रबल से ब्राह्मबल अर्थात् आत्मसंयम का बल ऊंचा माना गया है। प्रतिबन्ध का अर्थ ही है विघ्न या बाधा। बाधा हिंसा का ही प्रतीक है। इसलिए रामराज्य की महिमा अनोखी है। यह रामराज्य चाहे तुलसीदासजी का स्वप्न ही रहा हो, किन्तु इसमें भरा है बड़ा गूढ़ तत्व। इसको हम स्वशासन कह सकते हैं।

पुरानी कथा है कि विश्वामित्र ने बहुत तपस्या की, पर मन से हिंसा का भाव पूरा न निकाल सके। वसिष्ठ ने उन्हें राजर्षि कहकर ही सम्बोधन किया। किन्तु जहां उनके मन से हिंसा-भाव निकला, वसिष्ठ ने उन्हें ब्रह्मर्षि की उपाधि दे दी।

समुद्र स्वतन्त्र है। उसकी लहरों की हिलोरों में किसीकी कोई रोक-टोक नहीं। पर समुद्र रहता है अपनी मर्यादा में ही। परिधि के बाहर नहीं जाता।

दंड से किसीको मर्यादा नहीं सिखाई जाती। मनोवैज्ञानिक शास्त्रियों का कहना है कि जितने ज्यादा प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं उतनी ज्यादा एक थोड़े-से रोमांच के लिए उन्हें तोड़ने की लोगों की मनोभावना होती है।

जैसे धूप रोक देने से पेड़ पर फल नहीं लगते वैसे ही प्रतिबन्ध लगाने से मनुष्य की प्रगति बन्द हो जाती है। यदि चहचंहाते उड़नेवाले पंछी को पिंजड़े में बन्द करके रखा जाय तो कुछ दिन बाद वह उड़ना ही भूल जाता है। प्रकृति स्वकृत अनुशासन में रहकर भी स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र रहना सिखाती है।

ह्युएनसांग ने लिखा है कि भारतवर्ष के घरों में ताला शायद

ही कोई लगाता होगा। जब वह केरल प्रदेश में घूम रहा था तो उसने देखा कि लोग खेत से फल, तरकारी तोड़ लेते और एक पेड़ के पास पैसे अपने-आप रख देते। लोग काफी सम्पन्न थे। यह तो मानी हुई बात है कि उस समय शासकों के प्रतिबन्ध नहीं के बराबर थे।

स्वच्छन्दता तो बुरी है ही, पर प्रतिबन्ध उससे भी कहीं अधिक बुराई पैदा करते हैं। प्रतिबन्ध वैसे शासक की असफलता का द्योतक है। लाखों-करोड़ों दिमाग स्वतन्त्र रहकर जितना काम करते हैं उतना काम लोगों पर प्रतिबन्ध लगाकर एक दिमाग से ही कैसे पार लग सकता है!

बन्धनों से प्रजा का नैतिक पतन तो हो ही जाता है। स्वराज्य का अर्थ भी जनता के शासन से है, किन्तु प्रतिबन्धों से तो इसके बदले जनता पर शासन हो जाता है। सारी शक्ति का उद्‌गम तो जनता है, न कि शासकगण।

हमारा शुरू से स्वेच्छित अनुशासन का आदर्श रहा है। तैत्तिरीयोपनिषद् में श्लोक है—

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु, माविद्विषावहै॥

—हम दोनों रक्षित रहें, हम दोनों सुख भोगें। हम साथ-साथ बल लगायें, हमारी विद्या तेजस्वी हो, हम एक-दूसरे से द्वेष न करें।

यहां दोनों से अर्थ है गुरु और शिष्य। पर इसे व्यापक अर्थ में लेना चाहिए।

भावार्थ यह है कि भगवान हमारे रक्षक रहें, अर्थात हमें चरित्र में और सच्चा रास्ता दिखावें। यहां भाव यह है कि हम

अपने-आप भगवत्कृपा से सच्चे रास्ते पर चलें। हम सब सुखी रहें। यहां सुख का भौतिक अर्थ है—हम सब दुनिया में धन-धान्य और शरीर से स्वस्थ रहें। हम बल लगायें, अर्थात् सारा देश, सारे लोग प्रगति करें और तेजस्वी बनें। पर एक-दूसरे से द्वेष न करें। जब कोई आगे बढ़ जाता है तो पिछड़नेवाले के मन में कभी-कभी द्वेष-भाव पैदा हो जाता है, पर ऐसा न हो।

शेख सादी ने कहा है कि भगवान की जितनी देन है उनमें सबसे ज़्यादा कीमती है स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता के लिए युद्ध तो पृथिवी बनते ही शुरू हो गया था। स्वतन्त्रता की वेदी पर अगणित लोग बलि चढ़ गये हैं और आज भी चढ़ रहे हैं। अभी गत विश्वयुद्ध में जब हिटलर के वायुयान हज़ार-हज़ार की टोली में लन्दन पर गोले बरसाते थे तो भूकम्प की तरह धरती थरथरा रही थी। मकान-पर-मकान टूट-टूटकर गिर रहे थे और जगह-जगह भयंकर अग्नि सबकुछ स्वाहा कर रही थी। तब भी वहां के लोग निडर होकर गाते थे, "ब्रिटेनवाले कभी गुलाम नहीं बनेंगे।" यह भी एक नज़ारा था, जो कभी भूला नहीं जा सकता। यह उसी तेज का प्रभाव है कि वहां का प्रधानमंत्री एक साधारण से व्यक्ति की भी अवहेलना नहीं कर सकता।

तात्त्विक बात यह है कि जीवन-पथ पर अधिकार किसका है—अपना या शासक का। इसके लिए तत्पर, जागरूक रहना आवश्यक है और रामराज्य का आदर्श तो महान है। पर हम उससे बहुत दूर हैं, भूल बैठे हैं। रामराज्य का महत्व यही है कि लोग पूर्ण स्वतन्त्र होकर भी स्वेच्छा से अपने अनुशासन में रहें और यही 'सुराज' है।

१६

विश्व को भारत की देन

वेद का समय इतिहास-शोधकों के मत से एक तरह से प्रायः निश्चित हो गया है। सप्त-सिन्धु प्रदेश में आर्य करीब साढ़े चार या पांच हज़ार वर्ष पहले आये थे। वेद के बहुत-से मंत्र उसके पहले बन चुके थे। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में केवल दो ऋतुओं का वर्णन है। इन्हें 'हिम' और 'समा' बताया गया है। कुछ विदेशी लेखकों का मानना है कि 'समा' का अर्थ वर्ष से है। यों 'समा' का अर्थ वर्ष होता भी है। उस मंत्र में जहां यह आया है, उसका अर्थ कोई ऋतु ही होना चाहिए। केवल काल-खंड के लिए इसका उपयोग वहां नहीं किया जा सकता। अथर्ववेद में भी मंत्र है। षडाहुः शीतान षड् मासान् उष्णान् ऋतुन्नो ब्रूत यतमो अतिरिक्त, (८-६१७) खैर, कुछ भी हो, यह विदेशी इतिहासकारों का निर्विवाद मत है कि अनेक वेद-मंत्र सप्तसिन्धु में आने के पहले बन चुके थे।

आर्यों के दल-के-दल उत्तरी एशिया से चलकर यूरोप, ईरान और भारत में फैले। कुछ अंग्रेज और जर्मन लेखक इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि आर्य एशिया से आये। यह स्वीकार करना कि अंग्रेज़ों और जर्मनों के पूर्वज एशिया से आये थे, शायद उनके लिए अप्रतिष्ठा की बात हो। पर यह तो विषयान्तर है।

सप्तसिन्धु में आर्यों के बारह दल आकर बसे थे। इनमें सबसे पराक्रमी 'भरत' दल था, जिनके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष हो गया। करीब साढ़ेचार हजार वर्ष पहले इसी दल के कुशिक-वंश में विश्वरथ नामक पराक्रमी राजा हुआ। इसकी सूझ लम्बी थी। इसने इस देश में बसी हुई जातियों को, जिन्हें आर्य 'दस्यु' कहते थे, मिलाने का भारी प्रयत्न किया, यहांतक कि इसने एक दस्यु लड़की से विवाह भी कर लिया और अपने गुरु अगस्त्य से विरोध मोल लेकर राज-पाट छोड़ राजर्षि बन गया। अगस्त्य मुनि ने अन्त में हार मानी और स्वयं भी इस प्रयत्न में शामिल हो दक्षिण भारत में जा बसे। भरत दल में त्रिस्टु वंश का प्रतापी राजा था सुदास। उसने आर्यों के दस दलों के राजाओं को एक साथ परुष्णी नदी (वर्तमान रावी नदी) के किनारे पराजित कर आर्यों का भी एकीकरण कर दिया।

इसके पश्चात आर्य उत्तरी भारत में सब जगह फैल गए। काबुल से बंगाल तक और काश्मीर से विन्ध्य और कलिंग तक। विन्ध्य से दक्षिण पहुंचने में उन्हें तीन-चार सदियों तक और ठहरना पड़ा।

दस्यु बहुत हत भी हुए और दास भी बना लिये गए। किन्तु और देशों में विजितों और दासों पर जो अत्याचार ढाहे गए, वैसा यहां नहीं हुआ। कहते हैं अस्सिरिया में कई विजिताओं का जीते-जी चमड़ा उधेड़ दिया जाता था। मिस्र में भी विजितों पर और यहूदी दासों पर भीषण अत्याचार हुए। पर आर्य संस्कृति तो यह थी कि घर का स्वामी अपने आश्रितों को खिलाकर पीछे खाता था।

आर्य दस्यु शत्रु को कहते थे। उनमें और पिछड़ी जातियों के

अलावा द्रविड़ भी थे। द्रविड़ आर्यों से पहले पूर्वी भूमध्यसागर के किनारे से चलकर भारत आये थे। यह जाति यों पिछड़ी नहीं कही जा सकती। आर्य यज्ञ करते थे और इनके मुख्य देवता इन्द्र, वरुण, सूर्य इत्यादि थे। द्रविड़ पूजा करते थे। मूर्तियां शिव, विष्णु इत्यादि की रखते थे। आर्यों के केवल विन्ध्य पार करने मात्र की देरी थी कि दोनों सभ्यताएं इतनी मिल-जुल गईं कि आर्य संस्कृति जुदा कुछ नहीं रही। आर्यों ने पूजा ग्रहण कर ली और मन्दिर बनाने लगे। आर्य और द्रविड़ सभ्यता मिलने के बाद ही एक ऐसी लहर आई कि भारत बहुत आगे बढ़ गया।

कुछ विदेशी लेखकों ने मध्यपूर्वी देशों से उस काल की भारतीय सभ्यता को नीचा माना है। परन्तु ऋग्वेद के मंत्रों की कविता ही इस देश की प्रगति की द्योतक है। युद्ध-शास्त्र में भी आर्य मध्यपूर्वी देशों से कहीं आगे थे। आर्यों को बड़े नगरों में रहने की आदत नहीं थी। ये अपने-अपने वंश के फ़िर्कों के साथ अलग-अलग रहते थे। फ़िर्क एक तरह की समिति थी। उसका अगुवा राजा कहलाता था। समिति का एक तरह का लोकतंत्र होता था और गहन विषयों पर राजा समिति के मतानुसार ही चलता था। कम-से-कम विजितों के साथ इन देशों में जो व्यवहार हुआ उससे ही पता चलता है कि असभ्य कौन थे।

आज से पूर्व पन्द्रहसौ से तीन हज़ार वर्ष के बीच भारत में बड़े-बड़े सम्राट हुए। उनके विशाल साम्राज्य थे। तत्कालीन भारत में आध्यात्मिक चर्चा के साथ-साथ कला, साहित्य एवं सामाजिक विषयों में भी अच्छी प्रगति थी। राजकीय संगठन अपने ढंग का निराला था, जिसकी खूबियां भी थीं और कुछ कमजोरियां भी। भगवान बुद्ध के समय में भी जहां एक ओर सैकड़ों

संसार त्यागकर भिक्षु-वृत्ति ग्रहण कर रहे थे, वहां दूसरी ओर व्यापार और राजतंत्र में भी उन्नति हुई। इस ज़माने में न केवल विभिन्न दार्शनिक और भिक्षु ही, बल्कि बड़े-बड़े श्रेष्ठी और राजतंत्री भी पैदा हुए। यहां से व्यापार करने के लिए बड़े जहाज़ी बेड़े दोनों तरफ के देशों में जाते थे और साथ-साथ हमारे धर्म-प्रचारक भी रहते थे।

भारत से निर्यात काफ़ी होता था। प्रायः सब चीजें इसी देश में बनती थीं, इसलिए बाहर से निर्यात के बदले सोना ही आता था। कहते हैं कि रोम में जब नीरो का राज्य था, उस वक्त दस करोड़ रोमन सिक्कों के बराबर सोना भारत में आता था। रोमन सिक्का करीब ढाई दिरम के बराबर होता था।

कला ने भी यहां खूब प्रगति की थी। नामी ग्रीक विद्वान् मेगस्थनीज़ लिखता है, "चन्द्रगुप्त मौर्य का महल बड़ा शानदार था, जो कोरदार लकड़ी पर सुनहला काम करके बनाया गया था। यह बात नहीं कि उस ज़माने के कारीगर पत्थर पर काम करना नहीं जानते थे। पत्थरों से लकड़ी का मिलना आसान था इसीलिए शहर-के-शहर लकड़ी के बने हुए थे। इसके पहले भी यह कारीगरी रही होंगी, इसमें सन्देह नहीं। अच्छा काम करनेवाले एक दिन में नहीं पैदा होते। उनकी परम्परा अवश्य रही होगी। इसके पश्चात पत्थर की कारीगरी की काफी सामग्री पाई जाती है। धातु पर भी नक़्क़ाशी का काम होता था। सिक्कों के अलावा मूर्तियां भी मिली हैं, जो इस बात की साक्षी हैं। कुल्लू में तांबे का लगभग दो हजार वर्ष पुराना एक कलश मिला था, जिसके चारों ओर कलापूर्ण नक़्क़ाशी का काम है।

संगीत में सातों स्वर निकल चुके थे। यह तो जानी-मानी

बात है कि सामवेद का गान स्वरों पर होता था। और गान भी गाये जाते होंगे, पर आज उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

साहित्य की प्रगति को उपनिषद और गीता तो बताती ही है, पर इक्कीससौ वर्ष पहले पाणिनि-जैसा व्याकरण लिखना कोई सहज बात नहीं थी। भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी देन है उसकी ध्वन्यात्मक वर्णमाला। उल्टे-सीधे रोमन वर्णों के मुकाबिले में तरतीबवार जमाये हुए पहले स्वर, फिर व्यंजन की वर्णमाला बनाना उस ज़माने में सचमुच अनोखी सूझ थी। इसी वर्णमाला की कृपा से विदेशी व्याकरणीय ध्वनि-संगत वर्ण सीख सके।

यह साहित्यिक प्रगति प्रायः आज से डेढ़ हज़ार साल पहले तक चलती रही। इसी काल में अश्वघोष, कालिदास, भारवि आदि कई महाकवि हुए, जिनका आज भी सब जगह नाम है।

ऋतु तो दो से चलकर छह तक कबकी बन चुकी थीं और वर्ष को बारह महीनों में विभाजित कर उनका नामकरण भी हो चुका था। कुछ नाम अबतक बदल भी चुके हैं। नव-ग्रहों में राहु और केतु को छोड़कर बाकी सात ग्रहों पर दिनों के सात नाम रखे गए। महीना चन्द्रमा के साथ तिथियों पर आज भी चलता है। तीस महीने बाद एक महीना बढ़ाकर सूर्य की चाल से दिन पूरे किये जाते थे।

किन्तु गणित-शास्त्र में भारत के विद्वानों को जगद्गुरु ही मानना चाहिए। वेदी आदि बनाने के लिए ज्यॉमिति और दशमलव (Decimal) पद्धति का आविष्कार यहीं हुआ। भारत के गणितज्ञ ईसा की सातवीं सदी तक भी इतने आगे थे कि ग्रीस भी, जो यूरोप में गणित में सबसे ऊंचा माना जाता है, भारत से

पिछड़ा हुआ था।

कौटिल्य अर्थशास्त्र आज से करीब २४०० साल पहले लिखा गया था। उस समय अर्थनीति पर विचार करना और उसपर ग्रन्थ लिखना किसी भी देश के विद्वानों की समझ के बाहर की बात थी।

न्याय-शास्त्र में भी भारत बहुत आगे था। किन्तु जिस विषय में आज भी दुनिया इससे पिछड़ी हुई है, वह है दर्शनशास्त्र। जहां औरों का तत्वज्ञान समाप्त होता है वहां से भारतीय तत्व का आरम्भ होता है।

वैशेषिक दर्शन ने 'अणु-परमाणु' की तात्विक शोध कर सिद्ध किया कि जगत में सबकुछ गतिमान है और वह किसी-न-किसी नियम पर आधार रखता है। सभी दर्शनों ने यह स्पष्ट किया कि नियम निरर्थक नहीं है; अतः कोई निष्क्रिय नहीं हो सकता। प्रकृति का आदर्श-पालन अनिवार्य रूप में करना ही पड़ता है।

छोटी-सी टहनी पर छोटे-छोटे पत्ते बढ़ने लगते हैं। पत्ते सूर्य की रोशनी से खुराक खींच लेते हैं और वायु से आक्सिजन निकालकर वापस छोड़ देते हैं, कारबन डायोक्साइड पेड़ में पहुंचाते हैं। पत्ते बड़े होकर नित्य का यह काम वन्द करते ही सूखकर गिर जाते हैं और उनकी जगह नये पत्ते निकलने लगते हैं। पेड़ भी निष्क्रिय पत्तों को नहीं चाहता।

ब्रह्माण्ड में निष्क्रिय कोई नहीं रह सकता। छोटा बालू का कण, उसके भीतर भी ब्रह्माण्ड है। उसके बीच के न्यूट्रोन और प्रोटीन के पुंज के चारों तरफ, जैसे सूर्य के चारों तरफ तारे घूमते हैं, उसी तरह, एलेक्ट्रोन घूमते रहते हैं, पर पत्ता सूखकर पत्ता नहीं रह जाता।

सिद्ध किया गया कि कर्म का महत्त्व सबसे श्रेष्ठ है। लोकमान्य तिलक ने कर्मयोग की महिमा का गान करते हुए कहा कि कर्म ही धर्म है, कर्म ही जीवन है और कर्म ही फल है। निष्कर्म का अर्थ है निष्प्राण हो जाना, क्योंकि निष्क्रिय का नाश अवश्यम्भावी है।

जल बिना प्रवाह के, वायु बिना वेग के, अग्नि बिना तेज के जैसे मूल स्वभाव से परे होजाती है, वैसे ही कर्महीन मनुष्य अपने मूल से कट जाता है।

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्त कामाः।
द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुख-दुःख संज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत् ॥

जो मान और मोह से रहित हैं, जिन्होंने आसक्ति-दोष जीत लिया है, अध्यात्मज्ञान में सदैव स्थिर रहकर जो निष्काम और सुख-दुःख द्वन्दों से मुक्त हो गए हैं, वे ज्ञानी पुरुष उस अव्यय स्थान को जा पहुंचते हैं।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

उसकी योग्यता ही श्रेष्ठ है, जो मन से इन्द्रियों को वश में करके, कर्मेन्द्रियों द्वारा अनासक्त बुद्धि के कर्मयोग का आचरण करता है।

मनुष्य-जीवन में गुत्थियां अक्सर आती ही रहती हैं। सामने कठिनाइयां आने पर मनुष्य का क्या व्यवहार रहता है—कभी शरीर-रक्षा और कीर्त्ति, बन्धु-प्रेम और धर्म में झगड़ा हो या ऐसे और भी प्रश्न उठ खड़े हों तो ऐसे समय में क्या कर्त्तव्य है और

क्या अकर्त्तव्य, यह निर्णय करना एक समस्या हो जाती है।

अर्जुन के सामने भी ऐसा ही प्रश्न था। जैसे कैंसर होने पर अपनी जीवन-रक्षा के लिए मनुष्य अपना हाथ कटवाकर भी फेंक देता है, वैसे ही कभी-कभी जीवन में धर्म के लिए बन्धु-बान्धवों को भी छोड़ना पड़ जाता है। अनासक्तिपूर्वक विचार किये बिना मनुष्य सही कर्म कर नहीं सकता।

एक प्राचीन व्याध की कथा महाभारत में है। वह अपना पेशा पशु-पक्षी का मांस बेचकर चलाता था, पर था वह धर्मरत। उसे सब लोग धर्म-व्याध ही कहते थे। एक ब्राह्मण जब उससे उपदेश लेने पहुंचा तो उसने बताया कि यह धन्धा उसने अपनी इच्छा से नहीं उठाया। यह तो उसके कुल में दादा-परदादा से चलता आया था। वह मां-बाप की सेवा करता था। सदा सत्य भाषण करता, किसीकी निन्दा नहीं करता और यथाशक्ति दान भी देता था। अपने आश्रितों का पालन करता और व्याध होकर भी स्वयं मांस-भक्षी नहीं था। हिंसा के लिए वह हत्या नहीं करता था, न धन-उपार्जन के लिए। वह केवल अपना धन्धा चलाकर मात्र जीविका के लिए यह काम करता था। इससे बढ़-कर अनासक्त कर्म का उदाहरण नहीं मिलता।

मान-मोह का नियमन, आत्मनिग्रह, बिना आत्म-ज्ञान के नहीं होता, और बिना आत्मनिग्रह के सूक्ष्म निर्णय सम्भव नहीं। इस-लिए इस देश में अध्यात्म-ज्ञान को सदा से ऊंचा स्थान दिया गया है। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि दर्शन-शास्त्र में शोध करनेवाले जीवन को उपेक्षित समझते हैं और निस्सार, विषादपूर्ण विचारों में ही डूबे रहते हैं।

प्राचीन काल में राजा उशीनर ने बहुत-से यज्ञ किये तो

उसका तेज इन्द्र से भी वढ़ गया। इन्द्र ने राजा की परीक्षा लेने के लिए अग्नि को कबूतर वनाया और स्वयं वाज वनकर कबूतर पर झपटा। कबूतर कांपता हुआ राजा की गोद में जा गिरा।

वाज ने आकर मांग की कि मेरा खाद्य मुझे दे दिया जाय। राजा ने वताया कि वह शरणागत को नहीं छोड़ सकता। वाज ने कहा कि यदि राजा ने उसकी क्षुधापूर्ति में वाधा डाली तो उसकी मृत्यु होगी और पाप राजा को लगेगा।

राजा ने एक तराजू मंगाया। एक पलड़े पर उस कबूतर को रखा और दूसरे पर अपनी जंघा से मांस काटकर तौलने लगा। जब दोनों जंघाओं और शरीर का मांस काटने पर भी कबूतर का पलड़ा न उठा तो राजा स्वयं उसपर बैठ गया।

यह निष्काम धर्मप्राण व्यक्ति का लाक्षणिक वर्णन वड़ा सुन्दर है। गीता के अनुसार नित्य निष्कामकर्म करनेवाला यज्ञ ही करता है।

असल में आर्य-धर्म या आजकल जिसे 'हिन्दूधर्म' कहते हैं, उस तरह का धर्म नहीं है, जैसेकि दूसरे धर्म-मज़हब हैं। यह तो एक ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का, ईश्वर के साथ एक होने का, विश्वात्मा में मिलकर एक हो जाने का रास्ता है। जो वात अनुभूति की है, वह केवल बुद्धि द्वारा समझी नहीं जा सकती—जानी और देखी जा सकती है।

आत्मा अदृश्य और व्यापक है। सृष्टि के लिए वह व्यक्त होता है, दीखता है। शरीर-विशेष की आत्मा को केवल जीवात्मा कहते हैं, और बाहर जो कुछ है, जिसका अनुभव होता है, वह ब्रह्म है, (सर्वंवेदाखिलम्ब्रह्म)।

छान्दोग्योपनिषद् में एक उदाहरण आता है। उद्दालक ऋषि

ने अपन पुत्र श्वेतकेतु से नमक की डली मंगाई और उसे पानी के एक वर्तन में गिरा दिया। दूसरे दिन सुबह उसने अपने पुत्र से वह नमक मांगा। श्वेतकेतु पानी का वह पात्र ले आया। नमक पानी में मिला हुआ था। पिता उद्दालक ने श्वेतकेतु को ऊपर से एक घूंट पानी पीने का आदेश दिया। जल पीने पर पिता ने पूछा, "जल का स्वाद कैसा है?"

श्वेतकेतु—"नमकीन है।"

पिता—"ऊपर से पानी गिराकर बीच भाग में से पीओ।"

पुत्र—"मध्यभाग में भी नमकीन है।"

पिता—"तो अब एकदम नीचे का जल लो।"

पुत्र—"यह तो सारा ही नमकीन है।"

उद्दालक ने बताया कि न दीखते हुए भी जैसे नमक पानी में रम गया है, वैसे ही आत्मा शरीर में रमी हुई है।

इन्द्रिय-शरीर कर्म करता है, भोगता है, और वही मरता है। आत्मा सब देहों में वास करते हुए संसार के सब काम वही करती और कराती दीख पड़ती है। पर वह है केवल साक्षी। यह पूर्ण-रूप से सम्भव तभी है, जब कर्म करते हुए भी उससे अलिप्त रहने की कला सीख ली जाय। जो सबका त्याग कर असंग होने की चेष्टा करता है, वह दूर रह जाता है। पर जो सब काम करता हुआ सबका अनुभव करके अनासक्त रह सकता है, उसीमें पूर्ण ब्रह्म व्यक्त होता है।

किसी वस्तु से अलग होकर उसका तत्त्व नहीं जाना सकता। वस्तु में रहकर उसके तत्त्व को समझकर ही अनासक्ति प्राप्त की जा सकती है। पानी में गिरकर पत्ते भीगकर सड़ जाते हैं, पर कमल का पत्ता पानी में दिन-रात रहकर भी ताज़ा ही रहता है।

इसलिए कहा गया है, "पद्मपत्रमिवाम्भसा।" निर्लिप्त के लिए यही उदाहरण है। काम में रत रहकर भी अलग रहना।

वेद-महिमाओं का सम्पादन कृष्ण द्वैपायन ने किया और वह इसीलिए वेदव्यास कहलाये। ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादन करनेवाले उपनिषद् वेद के अन्त में बने, इसलिए उनमें प्रतिपादित विषय को 'वेदान्त' कहा गया। उपनिषदों का सार कृष्ण भगवान ने आज से तीन हजार या साढ़ेतीन हजार वर्ष पूर्व कुरुक्षेत्र में सुनाया। इतना गहन, गम्भीर दर्शनशास्त्र और किसी भी देश में नहीं लिखा गया। पर भारत में फिर भी ऋषि हुए, जिन्होंने 'नेति' 'नेति' कहकर और भी आगे पैठने की कोशिश की और अनन्त ज्ञान का अन्त नहीं माना। सत्य की शोध का अन्त हो भी कैसे सकता है?

१७

'पढ़ा, पर गुणा नहीं'

एक अच्छे नामी वयोवृद्ध वैद्य थे। उनका पुत्र भी आयुर्वेदाचार्य होकर उनके साथ-साथ रहकर अनुभव प्राप्त कर रहा था। एक दिन वैद्यजी अपने पुराने यजमान सेठ पूनमचंद को देखने गये। पूनमचंद के कमरे के सामने कुत्ता बंधा था। भीतर कमरे में एक पलंग पर सेठजी लेटे हुए थे। एक तरफ़ उनका परिचारक खड़ा था। वैद्यजी ने नब्ज़ देखी और चारों तरफ कमरे में दृष्टि दौड़ाई। पूनमचंद को बुख़ार तेज़ था।

वैद्यजी ने नब्ज़ देखकर कहा कि आम-जैसे गरिष्ठ फल खाते रहने पर मेरी दवा क्या फ़ायदा करेगी ? सेठजी को खान-पान में परहेज़ रखना चाहिए। पूनमचंद ने वैद्यजी से माफ़ी मांगते हुए फिर वदपरहेज़ी न करने का वचन दिया।

घर लौटने पर वैद्यजी के पुत्र ने पूछा कि आपको आम खाने का पता कैसे लगा ? वैद्यजी ने बताया कि कोने में एक तश्तरी पर आम की गुठली जो पड़ी थी। वैद्य को चौकन्ना रहना चाहिए और रोगी के आसपास की वस्तुओं को देखकर अनुमान भी लगा लेना चाहिए।

दूसरे दिन वैद्यजी ने अपने पुत्र को सेठ पूनमचंद के यहां भेजा। उसने देखा, आज दरवाज़े पर कुत्ता नहीं है। कमरे में एक खूंटी पर कुत्ते की जंजीर और गलपट्टा लटक रहे थे। बुख़ार

अब भी तेज़ था। वैद्यजी के पुत्र ने नब्ज़ देखकर कहा कि सेठजी ने बदपरहेज़ी तो अब भी नहीं छोड़ी। अब तो वह कुत्ते-जैसे निकृष्ट पशु को भी चट कर गये।

सेठ गुस्से के मारे तिलमिलाकर चिल्ला उठा कि कहीं कुत्ता भी खाया जाता है! अपने नौकरों से धक्के मारकर सेठ ने उसे बाहर निकलवा दिया।

यह एक गंवारू मिसाल है कि पढ़कर भी वैद्यजी का पुत्र कुछ सीखा नहीं।

हम केवल सुनने के लिए नहीं सुनते, किन्तु आवाज़ सुनकर आवाज़ करनेवाली वस्तु का अनुमान लगाते हैं। हम केवल देखने के लिए नहीं देखते, पर दिखनेवाली वस्तु का रूप-रंग देखना चाहते हैं। भय केवल भय के लिए नहीं होता, किन्तु किसी भयानक वस्तु से भय होता है। इसलिए यह सर्वमान्य है कि साधना के लिए ही साधना नहीं की जाती। साध्य का होना ज़रूरी है। दवा का नाम जान लेने से ही रोग दूर नहीं होता, किन्तु दवा के सेवन से ही रोग की निवृत्ति होती है। 'ब्रह्म', 'ब्रह्म' उच्चारण से मुक्ति नहीं मिलती, मुक्ति तो ब्रह्मात्मैक्य से ही संभव है।

पर गुणन केवल जानी हुई वस्तु के बारे में ही होता है। जब स्कूल में शिक्षक कुछ लिखाता है तो अक्षरों का ज्ञान जिसे हो वही लिख सकता है। भाषा जानी हुई हो, तभी भाषा का अर्थ और विषय की गूढ़ता समझी जाती है।

'जाके पांव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई?' पराई भूख या पराया आनन्द कोई भी अनुभव नहीं करता। लिखकर या समझाकर किसीको पढ़ाया तो जा सकता है, पर

उस पढ़ाई के गूढ़ अर्थ को हृदयंगम करना न तो शिक्षक के बस की बात है, और न इस तत्त्व पर किसीका कोई उत्तराधिकार ही हो सकता है। अपने विचार-विमर्श से स्वयं पाठक ही पाठ के गूढ़-तत्त्वों की सतह के नीचे पहुंच सकता है।

यों तो एक तरह से शिक्षा का वास्तविक तत्त्व अव्यक्त-सा ही रहता है, पर यह मनन करनेवाले से तो कभी छिपा नहीं रहता। जैसे सांप का नहीं जाननेवाला है, जो साथ-साथ सांप का ज़हरीला-पन भी जानता है। चौमुखी पहलू का सच्चा अनुभूत ज्ञान होना ही शिक्षा का 'गुणन' है।

इसके अलावा यदि एक ज्ञानवान कहलानेवाला व्यक्ति शिष्टाचार का व्यवहार नहीं करता तो वह ज्ञान की सीमा से बहुत दूर है। वास्तव में तो हम यह कह सकते हैं कि स्वास्थ्य, सम्पत्ति तथा अन्य मानी हुई अच्छी वस्तुएं तभी अच्छी रह सकतीं हैं, जबकि उनका प्रयोग करनेवाले लोग अच्छे हों। ऐसी देनवाला व्यक्ति इनका दुरुपयोग करे तो उससे कहीं अच्छा तो यह होगा कि वह शिष्ट अथवा चेतन की श्रेणी में न रखा जाय।

इस बात की जानकारी कि 'आप क्या जानते हैं' और 'आप क्या नहीं जानते' भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। पर एक चिकित्सक के लिए केवल औषधि का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए यह जानना भी आवश्यक है कि अमुक रोगी के लिए कौन-सा नुस्खा अधिक लाभदायक होगा। दूसरे शब्दों में, केवल वस्तु-ज्ञान ही काफी नहीं है। उसे यह भी जानना होता है कि स्वास्थ्य किसे कहते हैं। इसी प्रकार नेता के लिए केवल समष्टि-ज्ञान ही यथेष्ट नहीं है, परन्तु उसे यह भी जानना चाहिए कि 'सही' क्या है।

यदि एक व्यक्ति दूसरे से स्नेह करता है, जो उस दूसरे का मित्र है—प्रियजन का प्रेमी—तो यह 'क' का 'ख' के प्रति एकांगी स्नेह है। क्या किसीको यह कहने का अधिकार है कि 'क' और 'ख' परस्पर मित्र हैं ? स्नेह का प्रतिदान न होने में ही मुख्य आपत्ति है। 'क' की 'ख' से विशेष आसक्ति हो सकती है, यद्यपि 'ख' 'क' के प्रति उदासीन है, और शायद विरक्त भी हो सकता है। एक बालक सर्प के रंग को पसंद कर सकता है, और वह सर्प को पकड़ना चाहेगा, परन्तु क्या सांप भी बालक को पसन्द करेगा ? जबतक आकर्षण पारस्परिक न हो, तबतक मैत्री नहीं हो सकती।

एक प्राचीन कवि ने गाया है कि मैत्री उन्हींमें सम्भव है जो एकदम भिन्न होते हैं, जैसेकि कोई रोगी और उसका चिकित्सक, क्योंकि एक को दूसरे की सहायता की अपेक्षा है; अथवा धनिक और दीन, क्योंकि धनिक को सेवक चाहिए, और दीन को उचित आजीविका। एक दार्शनिक ने इसे और भी अधिक स्पष्ट किया है। उसका कथन है कि प्रकृति में प्रत्येक वस्तु को संतुलन के लिए अपने विरोधी तत्त्व की आवश्यकता है—जैसे उष्णता को शीत की और शुष्कता को नमी की। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि विरोधी तत्त्वों का आकर्षण ही मैत्री है, क्योंकि यदि हम इस तर्क को स्वीकार कर लें तो यह भी कहा जा सकता है कि घृणा और प्रीति दो अत्यन्त विरोधी तत्त्वों का जोड़ा है। इसी प्रकार पाप और पुण्य। इसलिए हमें इस तर्क के मूल तत्त्व के और भी विश्लेषण करने की आवश्यकता है।

समानता अथवा असमानता दो मित्रों के परस्पर आकर्षण के कारण नहीं हो सकती। स्वास्थ्य अच्छी चीज़ है, रोग बुरी चीज़

है। जबतक मनुष्य स्वस्थ रहता है, चिकित्सक की परवा नहीं करता। परन्तु जब उसे रोग की आशंका होती है, वह चिकित्सक का स्वागत करता है। क्या तब इसका यह अर्थ हुआ कि जिसकी हम परवा करते हैं, वही अच्छा है और हम बुराई के कारण ही उसकी परवा करते हैं? यदि संसार में बुराइयां न हों, तो क्या हम किसी अच्छी चीज की परवा न करेंगे? परन्तु ऐसा नहीं है। हर किसीको अच्छाई की अपेक्षा है। जिसका अभाव होता है, हमें सदा उसीकी चाह रहती है। अभाव का तात्पर्य है—किसी चीज़ का न मिलना। यह किसी ऐसी चीज का अभाव है, जो हमें अपनी पूर्णता के लिए अनिवार्य है। इसलिए यदि किसीमें अच्छाई का अभाव है, तो वह सदा अच्छाई की ओर उन्मुख रहेगा, भले ही वह इस प्रेरणा का गला घोंटने की कोशिश में रहे।

कई लोग अपने बारे में अविज्ञ रहना पसन्द करते हैं। निजी छिद्रों का ज्ञान दुःखतर होता है और अपनी महानता का भ्रम आनन्दमय। किन्तु अपनी अविज्ञता में रहनेवाले अपने अवास्तविक व्यवहार से दूसरों के लिए तकलीफ़ें पैदा कर देते हैं।

एक मिस्त्री साइकिल के छोटे पुर्ज़े बनाता है। पर वह अपने स्वतंत्र विचार में आकर अपनी मर्ज़ी से अलग क़िस्म के पुर्ज़े बना डालता है। उसे पुर्ज़े ऐसे बनाने चाहिए थे, जो अच्छी तरह साइकिल पर बैठते। मिस्त्री काम करना तो जानता है, पर उसका काम ज़रूरत की पूर्त्ति करनेवाला नहीं होता, अर्थात् साध्य तक नहीं पहुंचता, उससे बहुत परे रह जाता है।

यह साध्य और साधना का द्वन्द्व चलता ही रहता है। जिसे एक दृष्टि साध्य समझती है, वह व्यापक तौर पर साधना का एक अंगमात्र ही पाया जाता है। जैसे किसीने विधान-सभा के चुनाव

में खड़े होने का निश्चय किया। यह साधना हुई। चुनाव लड़कर जीतना भी साधना हुई। पर विधान-सभा के लिए निर्वाचित हो जाना भी साध्य नहीं है। कुछ लोग सभा में पहुंचकर भी नारों को नहीं भूलते। वह अपने नारों को पूरा करने के प्रयत्न को ही साध्य समझ लेते हैं। पर साध्य तो 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' ही हो सकता है। या यों कहा जाय कि सर्व-श्रेष्ठ भलाइयों का योग।

यह शायद एकदम दृष्टिगोचर न भी हो और दीखने में साधना ही साध्य प्रतीत होती हो। जो समझनेवाला है, उसके लिए ज्ञान सहल है, पर ज्ञानी से भी श्रेष्ठ ज्ञान-मार्ग पर चलनेवाला है। वस्तुतः ज्ञान-मार्ग पर चलनेवाला ही विद्या का पूरा 'गुणन' करता है।

विचार - प्रेरक निबन्ध

डेढ़ रुपया